भूमिका

—:—

प्यारी बहिनों !

मुझे आज यह लिखते अति हर्ष हो रहा है कि भारतवर्ष की वीर और विदुषी स्त्रियों के जीवन-चरित्र दस बार छप कर निकल चुके हैं और अब ग्यारहवीं बार २००० छप कर फिर तैयार हैं।

भारत में कौन ऐसी स्त्री है जो अपनी भगिनियों के सच्चरित्रों को जानने की इच्छा न करती हो। अतएव हम ने इस संस्करण में सरल हिन्दी भाषा में अठारह विदुषी स्त्रियों के जीवन-चरित्र छपवाये हैं।

अर्थात्—१ पद्मिनी, २ वीरमती, ३ चंपककुमारी, ४ सुन्दर बाई, ५ उर्मिला, ६ राजबाला और ७ अर्जुनकुमारी। तथा द्वितीय भाग में—१ तारामती २ पन्ना ३ रानी सावित्री ४ अनुसूया ५ महाराजा यशवन्तसिंह की रानी ६ ताराबाई ७ कृष्णावती ८ रानी हाड़ी ९ मेनुबाई १० साहब बाई ११ सिन्धु देश की रानी।

पिछले संस्करण में प्रेस की असावधानी से अनेक अशुद्धियाँ हो गई थीं। इस बार उनका संशोधन होकर शुद्ध हो गई है।

भूमिका

—:—

...हर्ष हो रहा है कि भारतवर्ष
...के जीवन-चरित्र दस बार छप
...ग्यारहवीं बार २००० छप कर फिर

...हैं जो अपनी भगनियों के सच्च-
...सकती हो। अतएव हम ने इस
...साथ विदुषी स्त्रियों के जीवन-

...२ चंचलकुमारी, ४ सुन्दर
...और ७ कञ्चनकुमारी। तथा
...१ सती सावित्री
...की रानी ६ जवाहर
...१० साहब बाई

...से अनेक बा
...होकर शुद्ध ह...

ॐ ओ३म् ॐ

भारतवर्ष की

वीर और विदुषी स्त्रियां

प्रथम भाग

पद्मिनी

महाराणा लक्ष्मणसिंह जी अपने बाप की गद्दी पर सन १२७५ ई० में बैठे। राणा जी की छोटे होने के कारण राज्य का कारोबार उनके काका भीमसिंह जी चलाते थे। भीमसिंह को सीलोन के चौहान राजा हमीरसिंह की पुत्री ब्याही थी जो अत्यन्त रूपवती होने के कारण पद्मिनी कहलाती थी। इस पद्मिनी का रूप राजपूताना की दुर्दशा का कारण हुआ। उसके रूप की प्रशंसा सारे देश में फैल गई थी। उस समय दिल्ली की गद्दी पर अत्याचारी अलाउद्दीन राज्य करता था। उसने यह सुनते ही पद्मिनी लेने की इच्छा की। इसलिये उसने मेवाड़ के ऊपर चढ़ाई कर चित्तौड़ को घेर लिया और कहला भेजा कि बिना पद्मिनी लिये हम दिल्ली वापस न जायंगे। परन्तु राजपूतों की मार के सामने उसकी सेना न ठहर सकी,

निराश होकर दिल्ली को वापिस चल पड़ा? मार्ग में किसी से पद्मिनी के रूप की उसने अधिक प्रसंशा सुनी, फिर क्या था इसने निश्चय कर लिया कि बिना पद्मिनी लिये जीवन निष्फल है। और फिर इसने चित्तौड़ को चारों तरफ से घेर लिया और लिखा कि हम पद्मिनी लिये बिना कदापि न जायँगे। जो राजपूत अपनी प्रतिष्ठा रखने को केसरिया वस्त्र पहिन कर जौहर करते थे और अपने मरने से पहिले अपनी स्त्रियों को चिता बनाकर आग में जला देते थे। वे राजपूत अपनी परम सुन्दरी रानी को मुसलमानों को दे दें, यह हो सकता था? अन्त में केवल शीशे में से पद्मिनी का मुख देखकर लौट जाना अलाउद्दीन ने अंगीकार किया, भीमसिंह ने अपने वीर पुरुषों के प्राण बचाने को यह बात स्वीकार करली।

अलाउद्दीन को राजपूतों के वचन पर विश्वास था इससे थोड़े मनुष्यों के साथ उसने चित्तौड़ में प्रवेश किया और जो बात ठहर गई थी तदनुसार पद्मिनी का मुख दिखा देने से उसने राजपूतों को धन्यवाद दिया। परन्तु अलाउद्दीन मुख से कहता कुछ था और मन में विचार कुछ रखता था जब से उसने पद्मिनी का मुख देखा तभी से उसकी व्याकुलता और बढ़ गई भीमसिंह और थोड़े से राजपूत लोग अलाउद्दीन के साथ बातें करते हुए गढ़ के नीचे उतर आये। परन्तु बादशाह के मन में पाप था, बातों ही बातों में राजपूतों को शिविर तक ले गया और अवसर पाकर भीमसिंह को कैद कर लिया और वहाँ से कहला भेजा कि पद्मिनी लिये बिना भीमसिंह को नहीं छोड़ूँगा। भोले और सिपाही मिजाज के राजपूतों ने सन्मुख [illegible] को आना ऐसा ही सरल हृदय का [illegible] कर अनिष्ट हुआ। इस शोक समाचार

के सुनते ही चित्तौड़ में घबराहट फैल गई अब क्या करना चाहिये, सो कुछ उन्हें उस समय सूझता न था।

अन्त में यह सब बात पद्मिनी ने सुनी, तब उसने अपने काका गोरा और गोरे के भतीजे बादल को बुलाकर पूछा कि क्या उपाय किया जाय जिससे स्वामी बन्धन से मुक्त हो जायें और मेरी प्रतिष्ठा में भी बट्टा न लगे ? उन्होंने ऐसी युक्ति बतलाई कि जिससे पद्मिनी की प्रतिष्ठा और प्राण दोनों बचें। उन्होंने अलाउद्दीन को कहला भेजा कि हम अपने राज्य के संरक्षक के बचाने के लिये पद्मिनी दे देने को प्रसन्न हैं। पद्मिनी भी दिल्ली के बादशाह के महलों में जाने को उद्यत है परन्तु पद्मिनी की प्रतिष्ठा और राजपूतों की रीति व्यवहार बिगड़ने न देने के लिये आपको कुछ नियम स्वीकार करने पड़ेंगे। प्रथम तो तुम घेरे उठाओ तब ही हम पद्मिनी को भेजेंगे? फिर पद्मिनी के साथ कुछ दासियाँ छावनी तक विदा करने को आवेंगी और कितनी ही तो उनकी निज की दासियाँ हैं जो दिल्ली को उसके साथ ही जाना चाहती हैं। इससे उनको आने की आज्ञा मिलनी चाहिये और उनकी मान प्रतिष्ठा भङ्ग न होने देना चाहिये।

राजपूतों के यहां नियम है कि स्त्रियाँ किसी को मुख नहीं दिखाती सो उसी प्रकार तुम्हारे यहाँ भी होनी चाहिये। पद्मिनी ऐसी रूपवती स्त्री के मुख देखने को तुम्हारे सर्दार लोग बड़े आतुर होंगे, इससे वे उसका मुख देखने को आवेंगे, सो उस का तो क्या किन्तु उनकी दासियों तक का भी मुख देखने की आज्ञा किसी को न होनी चाहिये। ये सब बातें स्वीकार हों तो तुम घेरा उठाने की आज्ञा देकर हमको जताना, इतने में हम पद्मिनी को उसकी दासियों के साथ तुम्हारे पास भेज देंगे।

पद्मिनी पर मोहित हुआ अलाउद्दीन ऐसे सुगम नियम क्यों न स्वीकार करता। उसे तो पद्मिनी लेनी थी चाहे जैसी कठिन बातें भी हों वह स्वीकार कर लेता। अलाउद्दीन ऐसे छली कपटी मनुष्य के लिये जैसा चाहिये वैसे ही गोरा और बादल भी मिले। अलाउद्दीन ने सब बातें स्वीकार करके घेरा उठाने की आज्ञा दे दी। इतने में चित्तौड़ में से एक के पीछे एक, इस प्रकार सात सौ पालकियाँ निकलीं उनमें से प्रत्येक में एक २ वीर लड़ाका राजपूत शस्त्र सहित बिठला दिया गया और उन पालकियों में से प्रत्येक के उठाने के लिये छः २ वीर शस्त्र-धारी राजपूत पालकी उठाने वालों के वेश में थे वे सब बादशाही शिविर के पास आये और एक बड़े तम्बू के भीतर, जिसके चारों ओर कनात लगी थी, सब डोले उतारे गए। अलाउद्दीन ने भीमसिंह को आध घंटे के लिये पद्मिनी से अन्तिम भेंट कर लेने की इजाजत दी। भीमसिंह तम्बू में आये तो उनको एक पालकी में बिठलाया गया और उनके साथ थोड़ी पालकी पीछे चलीं। मार्ग में एक शीघ्रगामी घोड़ा तैयार कर रक्खा था उसके ऊपर चढ़कर भीमसिंह चित्तौड़ गढ़ में कुशलता पूर्वक जा पहुंचे। इधर बादशाह अपने मन में बड़ा प्रसन्न था कि ऐसी अद्वितीय सुन्दरी मुझको मिल गई और कामातुर होकर प्रतीक्षा कर रहा था कि कब आध घंटा बीते और कब उस स्वर्गीय अप्सरा तुल्य पद्मिनी से भेंट हो। भीमसिंह को चित्तौड़ लौट जाने देने का विचार अलाउद्दीन का था ही नहीं उसी तरह बहुत देर तक भीमसिंह पद्मिनी के साथ बातें करें, यह भी उसे अच्छा न लगा इसलिये वह तम्बू में आया, परन्तु वहाँ भीमसिंह व पद्मिनी [illegible] ढूंढ़ने पर भी न मिले। पालकियों में से एक के पीछे एक [illegible] निकल पड़े। अलाउद्दीन को कल्पना न था इसके

यवन योधे उसकी रक्षा के लिये तैयार थे। राजपूतों ने कपट किया यह देख उसने तुरन्त ही भीमसिंह के पीछे सैनिक भेजे परन्तु बादशाही छावनी में आये हुए राजपूतों ने उनको रोक दिया। एक २ मनुष्य मरने तक वीरता से लड़ा, परन्तु बहुतों के आगे क्या बस चल सकता था। मुसलमानों ने चित्तौड़ के पहिले द्वार के आगे राजपूतों को पकड़ पाया परन्तु भीमसिंह तो उनसे पहिले ही ठिकाने पर पहुँच चुके थे द्वार के आगे जो राजपूत थे उनके नायक गोरा और बादल थे उन्होंने मुसलमानों को ऐसा त्रास दिया कि अलाउद्दीन को अपनी इच्छा के पूर्ण होने में भी शंका हो गई और उसे थोड़ी देर के लिये तो अपने ध्यान में से पद्मिनी को दूर करना पड़ा। भीमसिंह के छुड़ाने में बहुत से शूरवीर सिसौदिया मारे गये और बादल घायल हुआ तथा गोरा मारा गया। बादल की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी परन्तु उसने अपनी वीरता से लोगों को चकित कर दिया।

जब बादल घर गया तो गोरा की स्त्री (बादल की काकी) ने उससे पूछा कि बादल तेरे काका ने कैसी लड़ाई की यह मुझसे कह कि मरने से पहिले मेरा मन शान्ति पावे। बादल बोला कि काकी अपने काका की वीरता का वर्णन करने के लिये तथा अपने घाव बखानने को एक भी शत्रु जीता नहीं छोड़ा। यह सुन कर वह अति प्रसन्न हुई और बोली कि बस मुझे इतना ही सुनना था अब जो मेरे जाने में देर होगी तो स्वामी अप्रसन्न होंगे। इतना कह कर अपने स्वामी की जलती हुई चिता में कूद कर सती हो गई।

गोरा की स्त्री ने बादल से जिस समय अपने पति की वीरता का हाल सुना तो उसको अपने पति की मृत्यु का कुछ भी शोक

न हुआ प्रत्युत आनन्दोल्लास से उसका मुख प्रफुल्लित हो गया और शांति पूर्वक पति की चिता में प्रवेश करके उसकी सहगामिनी हुई, इस पर मेवाड़नी जाहोजलाली का लेखक लिखता है—"शूर सतियों तुम्हारा जितना बखान किया जाय सब थोड़ा है।" ऐसे दृष्टान्तों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय की वीर राजपूतनियों का अपने २ पतियों के साथ कैसा प्रबल प्रेम था। यूनान देश की स्पार्टन जाति की स्त्रियाँ तथा कार्थेज (मिश्र) देश की फिनशियन जाति की स्त्रियाँ भी इनके आगे किसी गणना में नहीं थीं, ऐसा कहे तो यह कुछ अत्युक्ति नहीं।

चित्तौड़ से अलाउद्दीन पहिली बार पीछे को हट गया परन्तु उसके हृदय में पद्मिनी लेने की बलवती इच्छा न हटी थी, इस लिये सन् १२९९ ई० में अपना दल इकट्ठा करके फिर वह चित्तौड़ पर चढ़ आया। पहिले युद्ध में राजपूतों के बड़े २ शूर मारे गये थे, वे अपनी कमी पूरी कर लेते इतना भी समय उनको अलाउद्दीन ने नहीं दिया। तो भी राजपूत लोग जितनी सेना इकट्ठा कर सके उतनी सेना इकट्ठा करके मुसलमानों से भिड़ने को उद्यत हुए।

चारण रामनाथ रत्नू ने इतिहास राजस्थान में लिखा है कि—"सिसोदियों ने गढ़ में बैठकर लड़ाई की, यह उनकी बड़ी भूल हुई और इनसे पीछे भी महाराणा प्रतापसिंह तक यह भूल होती गई जिससे मुसलमानों को प्रायः विजय पाने का अवसर मिला। क्योंकि गढ़ में बैठकर लड़ने से राजपूत लोग घिर जाते थे, देश शत्रुओं के हस्तगत हो जाता था. प्रजा को शत्रुओं से बचाने वाला कोई नहीं रहता था, शत्रुओं को सब प्रकार से सुख रहता था, उनको केवल इतनी ही सावधानी रखनी पड़ती थी कि गढ़ में बाहर से अन्न व जल न पहुँचने

पावे, जिससे कि गढ़ के भीतर के अन्न व जल के बीत जाने पर दो तीन दिन भूखों मर कर विवश क्षत्रियों को बाहर निकल कर लड़ना पड़ता था, उस समय शत्रु तो सब प्रकार सजे हुए होते और क्षत्रिय दो २ तीन २ दिन के भूखे, इसलिये यद्यपि वह लोग वीरता से लड़ते तो भी अन्त को प्रायः सब के सब मारे जाते। वे बचते भी तो आपस में कट मरते क्योंकि ऐसे अवसरों पर क्षत्रिय सदा अपनी स्त्रियों को जलाकर लड़ने को निकला करते थे, फिर उनको इस संसार में रहना किसी प्रकार स्वीकार न होता था। इसी प्रकार राजस्थान के सब राजाओं ने देहली के बादशाहों से पराजय पाई।

महाराणा प्रतापसिंह जी ने इस प्रकार की लड़ाई को छोड़ा, जिसका फल यह हुआ कि "अकबर जैसा प्रबल बादशाह भी उनको वश में न कर सका।"

छै मास तक असीम साहस और वीरता से राजपूत लड़े, परन्तु राणा जी को निश्चय हो गया था कि अब चित्तौड़ के साथ सब सिसोदियों का भी नाश होने वाला है। इनके बारह पुत्र थे उनमें से कोई तो एक बच रहे कि जो तुर्कों से वैर लेता रहे, इस विचार से उन्होंने अपना एक प्यारा पुत्र अजयसिंह मेवाड़ के पहाड़ों में भेज दिया और शेष ग्यारह पुत्रों को लेकर लड़ने को उद्यत हुए। वे और उनके ११ पुत्र वीरता पूर्वक लड़ कर मारे गए। मुसलमान भी बहुत से मारे गए परन्तु किले में घिरे हुए राजपूतों की संख्या इतनी घट गई थी कि अन्त को उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिये केशरिया ❀ बाना पहिने बिना दूसरा उपाय न देखा।

❀ जब निराश होकर मरने-मारने को उद्यत होते हैं तो राजपूत केशरिया वस्त्र धारण करते हैं।

ऐसा करने से पहिले राजपूतनियों को क्या करना चाहिये, यह विचार करना शेष रहा । जिसके लिये चित्तौड़ वालों ने यह आपत्ति अपने शिर पर ली थी, उस पद्मिनी तथा दूसरी राजपूत स्त्रियों की प्रतिष्ठा बनी रहे, यह उपाय सबसे प्रथम करना चाहिये । राजपूतों ने केसरिया वस्त्र धारण का विचार अपनी स्त्रियों को जता तो वे भी अपने पतियों के साथ प्राणान्त करने को उद्यत हुईं । पति के पीछे सती होने का तो उनका विचार था ही, तो क्या शरीरात करने की भागिनी होकर वे पीछे हटने वाली थीं ! उन्होंने कहा कि हम भी तुम्हारे साथ केसरिया वस्त्र पहन कर शस्त्र बाँधकर लड़ेंगी और शत्रुओं के नाश करने में तुम्हारी साथिनी होवेंगी । तुम्हारे मरने से तो शत्रुओं को मारते २ मरना हमको अच्छा जान पड़ता है। मुसलमानों को हमारे हाथ का भी स्वाद चखने दो कि वे भी जान लें कि ऐसी स्त्रियों की कोख में जन्म लेने वाले पुरुष हमको कदापि शिर झुकाने वाले नहीं है और इसी से वे फिर कभी चित्तौड़ पर चढ़ाई करने का साहस न करेंगे । परन्तु यह बात राजपूतों को उचित न जँची । यदि लड़ने को जावें और दैवयोग से एक भी जीवित स्त्री मुसलमानों से पकड़ी जावे तो क्या हुआ सब उद्योग निष्फल हो जावेगा और कदाचित पद्मिनी ही पकड़ी जावे तो उनकी इच्छा पूर्ण हो जावेगी, इसलिये ऐसा तो कदापि करना उचित नहीं । फिर उनके प्राणान्त का अन्य मार्ग क्या था ? जिन तलवारों से शत्रुओं के गले काटे जाते थे वे तलवारें अपनी प्राण प्रियाओं के ऊपर किस प्रकार उठाई जा सकती थीं ! अन्त को वे स्त्रियाँ एक चिता में प्रवेश करके उसमें अग्नि लगाकर जल मरने को उद्यत हुईं राजपूतों को भी यह विचार अच्छा लगा । एक बड़े

घर में चिता बनाई गई और सब क्षत्राणियाँ उस पर बैठ गईं तो उसमें आग लगा दी गई और घर सहित भस्म हो गईं, आग लगते ही उसका धुआं आकाश में पहुँचा और उसका प्रकाश अलाउद्दीन की छावनी में भी पहुंचा। अब राजपूत केशरिया वस्त्र पहन नंगी तलवारें हाथों में ले सिंह की सी गर्जना कर द्वार खुला छोड़ "जय इकलिंग जी की जय" करते हुए मुसलमानों पर धावा किया और अलौकिक वीरत्व प्रकाशित करते हुए उनमें से प्रत्येक मारा गया। भीमसिंह भी वीरता पूर्वक लड़कर मुसलमानों के हाथ से मारे गये। अब चित्तौड़ गढ़ में घुसने के लिये मुसलमानों को कुछ रुकावट न रही वे सुगमता से घुस गये, परन्तु जिसके लिये अलाउद्दीन ने अपने सहस्त्रों मनुष्यों के प्राण खोये थे और सहस्त्रों राजपूतों के प्राण नाश किये थे, उस पद्मिनी को प्राप्त करके जब उसने अपने हृदय को शीतल करना चाहा तब वह अग्नि में जल कर भस्म हो चुकी थी, इससे अलाउद्दीन के शोक और निराशा की सीमा न रही। उसे घेर लेने को जब कोई सजीव प्राणी चित्तौड़ में नहीं दीखा तो उसने क्रोधवश चित्तौड़ के महल और देव मन्दिर तुड़वा डाले और इस तरह से यहाँ की प्राचीन कारीगरी के चिह्नों का नाश किया। अन्त को जब निर्जीव पदार्थ भी उसे नाश करने को न मिले तब वह पापी चित्तौड़ के खंडहरों का राज्य अपने एक अधिकारी को सौंपकर आप दिल्ली को हाथ मलता हुआ चला गया। और पद्मिनी का पवित्र जीवन स्त्रियों को अब तक एक उत्तम आदर्श का उपदेश कर रहा है।

वीरमती

दो०—एक भरोसा एक बल, एक आस विश्वास।
स्वाति सलिल गुरु चरन में, चातक तुलसीदास॥
बिन विचार का खेल है, झूठा जगत् पसार।
जिन विचार पति ना लखा, बूड़े कालीधार॥
तुलसी जल में कमल है, रवि शशि बसे अकास।
जो जाके मन में बसे, सो ताही के पास॥

धारानगर के राजा उदयादत्त के दो रानियाँ थीं। एक सुलंकिनी, दूसरी बघेलनी। बघेलनी छोटी और सुलंकिनी बड़ी थी और प्रायः ऐसा होता है कि राजा लोग छोटी रानी से विशेष प्रेम करते हैं इसी कारण छोटी रानी को यह राजा भी प्यार करता था, यहाँ तक कि उस पर कुछ ऐसा मोहित सा हो गया था कि उसकी आज्ञा के बिना पग तक न उठाता था। इन दोनों रानियों के पेट से दो पुत्र उत्पन्न हुए। सुलंकिनी का पुत्र जिसका नाम जगदेव था बड़ा था और बघेलनी के बेटे का नाम रणधूलि था। दोनों में जगदेव बड़ा होनहार सन्तोषी और बड़ी हिम्मत वाला था उसका विवाह टोंकटोड़ा की राजकन्या वीरमती से हुआ था, जिसका वृत्तान्त हम यहाँ लिखना चाहते हैं। एक दिन राजा उदयादत्त राजकुमार जगदेव से अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उसको घोड़ा जोड़ा ढाल तलवार और एक हीरे के दस्ते की कटार पारितोषिक में दी। राजा के ऐसे बर्ताव से जगदेव को और धारा निवासियों को बड़ी खुशी हुई। उनको पूरा २ यकीन हो गया कि अब राजकुमार जगदेव को अपने पूरे २ हक मिल जावेंगे। परन्तु हा दैव! तेरी कैसी

गति है । हाय ! तू भी बेचारे साधू जगदेव की बढ़ती न देख सका। किसी ने जाकर बघेलनी से कहा कि राजा ने आज जगदेव को युवराज नियत किया और अपनी यह २ वस्तुएं उसको पारितोषिक में दीं जोकि बहुत ही बहुमूल्य थीं। यह सुनकर रानी को अत्यन्त क्रोध आया और राजा के पास जाकर कहने लगी—'क्यों क्या आप जगदेव को राज्य देना चाहते हैं ? अच्छा तो इसी में है कि जगदेव से सब चीजें वापस ले ली जावें और वे मेरे पुत्र रणधूलि को दी जावें। यदि ऐसा न होगा तो प्रजा अभी से जगदेव की हिमायती बन जावेगी और मेरे पुत्र रणधूलि की हानि होगी ।'

स्त्री के जाल में फंसा हुआ राजा बड़ा घबड़ाया और रानी को समझाने लगा कि ऐसे बर्ताव से बड़ा अपयश और बदनामी होती है और फिर राजा का एतबार बिलकुल उठ जाता है पर रानी कब मानने वाली थी उसने ऐसा मक्कर गांठा कि राजा को उसकी बातें माननी ही पड़ीं उसने बड़े बेटे को बुला भेजा और कहने लगा—"पुत्र यदि तू मेरा जीवन चाहता है तो जो वस्तुयें मैंने तुझ को दी थीं उनको वापिस कर दे, तू क्षत्री पुत्र है बाप के संग हठ करना ठीक नहीं ।" जगदेव समझदार था। उसकी अवस्था भी १५, १६ वर्ष से ज्यादा न होगी तिस पर भी वह समझ गया कि किस कारण से यह पारितोषिक हम से फेरा जाता है। तलवार और कटार दोनों कमर से बंधी थीं। उसने उसी समय उनको बड़ी सुश्रूषा सहित पिता के चरणों में रख दिया और कहा—"पिता जी ! ये लीजिये ये आप ही की तो वस्तुयें हैं, मुझे हठ क्यों हो। मैं कभी नहीं चाहता कि आप को कष्ट हो और न मैं कभी किसी झगड़े को अच्छा समझता हूँ।" पिता से इस प्रकार कहकर वह वहाँ से

चला आया और कपड़े जो राजा ने दिये थे घोड़े सहित सब फेर दिये। परन्तु वह भी तो मनुष्य था और मनुष्य भी कैसा कि एक साधारण मनुष्य नहीं किंतु राजपुत्र ? सोचने लगा—"माता पिता की आज्ञा मानना मनुष्य का धर्म है परन्तु अपमान के साथ जीवन विताना क्षत्री धर्म से बिलकुल विरुद्ध है। वह जिन्दगी नहीं जिसका हर समय अपमान होता हो परम पिता परमात्मा ने मुझ को हाथ पैर दिये हैं। पुराने राजाओं के संस्कार मुझे मेरे माता पिता से मिले हैं, फिर क्यों दूसरे राज्य में चलकर अपनी रोजी पैदा न करूं ! अपमान में एक घंटे भी रहना मुझे बुरा मालूम होता है।" वह हंसता हुआ माता के पास गया। माता समझी कि पिता की कृपा से इसको प्रसन्नता हुई है। वह कहने लगी—"क्यों जगदेव ! आज कैसे हंस रहे हो ?" पुत्र ने कहा—"माता तेरी आज्ञा लेने आया हूं।"

दो०—पान पदारथ सुघर नर, तोले विना बिकाय।
ज्यों २ निज घर परिहरें, त्यों त्यों मोल बढ़ाय ॥
सिंहों के लहुंदे नहीं, चंदों के नहिं ढेर।
माणों की नहिं बोरियाँ, वीर न होयँ घनेर ॥
रहिये पर्वत शिखर पर, कीजै तप बनवास।
वहां न रहिये वीर नर, जहां मान को नास ॥
घर में कबहूं ना मिलें, नाम मान, नवनिद्धि।
जबही जाय विदेश नर, लहे मान औ रिद्धि ॥
युवा अवस्था जानिये, ज्यों तरुवर की छांहिं।
साहस करि २ चतुर नर, संग्रह रिद्धि कराहिं ॥
अवसर बीते कुछ नहीं, सहे विपति सन्ताप।

समय विरथ नहिं खोइये, कीजे साहस आप ॥
घर में अवगुण तीन हैं, सुन लीजे सब कोय ।
ऋण बढ़े, साहस घटे, नाम मान नहिं होय ॥

जगदेव कहने लगा—"माता, अब गृह में रहने से मेरी भलाई नहीं है, तू आज्ञा दे मैं परदेश जाकर चाकरी कर लूंगा और अपनी रोटी आप पैदा करूंगा। माता की ममता कठिन होती है उसने बेटे को गोद में बिठा छाती से चिपटा कर कहा—" जो तू कहता है ठीक है, क्षत्री के बालक को अपमान की जगह में रहना उचित नहीं पर अभी तेरी अवस्था कम है पराये देश में कैसे अकेले रह सकेगा। मैं भी तेरे संग चलता परन्तु पति का संग छोड़ना स्त्री के लिये कभी भी प्रशंसनीय नहीं है मुझ को केवल तेरी अवस्था से डर लगता है।" जगदेव ने कहा—"माता, ईश्वर पर भरोसा रख, जो बालक के उत्पन्न होने से पहिले माता के स्तनों में दूध पैदा करता है वह हमारी रक्षा करेगा, इसलिये मुझ को तो कुछ चिन्ता नहीं।" माता ने कहा—"जो तुझ को ठीक जान पड़े सो कर, मैं रोक कर तेरे जीवन को खराब करना नहीं चाहती।"

माता की बात सुन उसने पीठ में तरकस, काँधे में कमान और कमर में तलवार बाँधी और अशर्फियों का एक तोड़ा संग ले लिया और माता के चरण छूकर ईश्वर के भरोसे वह घोड़े पर सवार हुआ और विदेश की ओर चल निकला। वह टोंक-टोड़ा की ओर जा रहा था और जब वह उस राज्य में पहुँचा तो अपनी इस खराब अवस्था से किसी को परचित करना ठीक न समझा। नगर के बाहर एक अत्यन्त सुन्दर उद्यान था उसके भीतर वह चला गया। गर्मी और बरसात के दिन थे

धूप और छाँह का समय था, वह एक वृक्ष के नीचे घोड़े का चारजामा बिछा कर बैठ गया। और जब बैठे २ अलसाया तो लेट गया। बस लेटना था नींद आ गई और ऐसा सोया कि बिलकुल सुध न रही।

दैवगति से अथवा उसकी अच्छी प्रारब्ध से वीरमती उसी की धर्म पत्नी अपनी सहेलियों के संग बाग की सैर को आई हुई थी। विवाह हुए अभी चार ही वर्ष व्यतीत हुए थे परन्तु दोनों की अवस्था कम होने के कारण अभी एक दूसरे के दर्शस्पर्श का समय नहीं आया था। लड़की का खाने खेलने और अल्हड़ पन का समय था, वह बाग में इधर उधर घूम रही थीं और सहेलियाँ वर्षा ऋतु गान कर रही थीं।

इतने में एक सहेली इस ओर आई जिधर राजकुमार जगदेव सो रहे थे, इसी समय कुछ वर्षा भी हो निकली। सोने वाला बड़ी गाढ़ निद्रा में सो रहा था, उसको अपने तन बदन की भी सुध न थी। सहेली इसके पास आई। पर-पुरुष का राजा के बाग में आना बड़े आश्चर्य की बात थी। वह बड़ी देर तक उसके मुख को देखती रही फिर घोड़े को देख वह देर तक चिन्ता में पड़ी रही कि "हैं! यह कौन युवा है?" अन्त को इसके होठों पर कुछ हंसी सी आई और वह दौड़ कर वीरमती के पास जा ठट्ठा मारकर हंसने लगी और कहा—"बाईजी, तुम्हारे दुलहा तुम्हें लिवाने आये हैं अच्छा सजीला बाँका जवान है" वीरमती क्रुद्ध होकर कहने लगी—"चल! तूने मेरी चिढ़ निकाली है। जब देखो तब ऐसी बातें करती रहती है।" उसने कहा—"नहीं इस समय हंसती नहीं हूँ। चल के दिखा दूं? वे सो रहे हैं।" भोली भाली लड़की बात में आकर सहेली के वृक्ष की आड़ में होकर उसको देखने लगी।

इस समय जगदेव जाग उठा और बैठा हुआ कुछ सोच रहा था। वीरमती उलटे पैरों चली गई। अरे सचमुच ? ये यहां कहाँ से आगये। उसको बड़ा आश्चर्य हुआ।

सहेली कुछ हिम्मत करके राजकुमार के पास पहुंची और कहने लगी—"महाराज! आपका शुभागमन हम सब के लिये धन्य है। आप अकेले कैसे आये और कहाँ जाते हैं?" राजकुमार बोला—"मैं नौकरी की तलाश में जारहा हूँ, राह की थकावट से सुस्ती आगई थी इस लिये यहाँ ठहर गया था अब घोड़े को कसकर फिर अपनी राह लूंगा।" राजकुमार को यह नहीं मालूम था कि यह भी राजा के महल की है। सहेली ने कहा—"आप जरा ठहरें मैं अभी आती हूं।" यह कह कर वह वीरमती के पास आई उसको संग लेकर महल में गई और राजा रानी सबको उसके आने की खबर सुनाई। जगदेव अपने घोड़े को मलकर काठी आदि कस रहा था कि उसका छोटा साला वीर्यसिंह मेहमानदारी की वस्तुएं लेकर आ पहुंचा और जब तक राज महल में इसके बुलाने के लिये राजसी ठाठ की तैयारियां होती थीं तब तक इधर उसने उसके पांव छूकर कहा—"आप जल्दी न करें कुछ दिनों यहाँ ठहरो, पिताजी ने कहा है पांच दिन बहुत नहीं होते आखिर हमारा भी तो कुछ आप पर हक है।" राजकुमार ने कहा—"मुझे हठ नहीं मैं जिद करना नहीं चाहता, यदि तुम्हारी इच्छा ऐसी ही है तो मैं ठहरने को तैयार हूँ।"

इसके बाद उसी बाग में उसके आराम के लिये डेरा लगाया गया, आतिथ्य की सब रस्में अदा की गई सायंकाल के समय महल में जाकर वह अपने सास और श्वसुर से मिला टोंक-टोड़ा के राजा ने उसके इस तरह से घर छोड़ने का कारण पूछा। जगदेव ने सब हाल कह सुनाया। लोग पहिले ही

जानते थे कि राजा छोटी के वश में है। उसकी निस्वत तो किसी ने कुछ नहीं कहा परन्तु राजा ने जगदेव को तसल्ली करके कहा—"यदि तुम यहाँ रहना चाहो तो यह तुम्हारा घर है।" परन्तु कई कारणों से उसने इसे अच्छा न समझा।

रात को वीरमती अपने पति से मिली और कहने लगी—"आप विदेश जा रहे हैं। मैं भी आप के संग चलूंगी।" जगदेव ने कहा—"मैं बिलकुल अकेला हूं न मेरा कोई साथी है न सहायक, तुमको संग नहीं ले चलूंगा क्योंकि तुमको भी दुःख होगा।" वीरमती ने कहा—"इसी कारण मैं आप के संग चलती हूँ कि आप को कष्ट न हो।" राजकुमार ने समझाया—"तुम स्त्री हो अभी तुम्हारी अवस्था तेरह चौदह वर्ष ही की है दुनियाँ की ऊंच नीच जानती नहीं हो परदेश में क्या संकट पड़े कैसा क्या हो कोई नहीं कह सकता, इस कारण मैं तुमको अपने संग न ले जाऊंगा।" वीरमती ने कहा—"आपने भी एक ही कही, जो मनुष्य अपनी पत्नी को जुदा रखना चाहता है उसको विवाह करने का अधिकार कहां है मुझ में इतनी बुद्धि है कि मैं आप के सुख दुःख को समझती हूं। मैं भी तो आखिर क्षत्राणी हूं अब मैं कभी भी आपका संग न छोड़ूंगी चाहे कुछ ही क्यों न हो जाय और दुःख सुख में भी बराबर संग रहूंगी।" वीरमती की ऐसी हठीली बातें सुन उसको अपने साथ ले चलने के लिये जगदेव को रजामन्द होना पड़ा और इधर दावत आदि में पांच दिन बीत गये।

छठें दिन राजकुमार वीर्यसिंह ने तीन सौ घोड़े और सवार जगदेव के संग करना चाहे परन्तु उसने कहा—"मैं इस समय गरीब आदमी हूं मैं किसी को भी संग न ले चलूंगा केवल

इतनी सहायता की आवश्यकता है कि पाटन देश की सीधी राह बता दो जिससे मैं वहाँ जल्दी से पहुंच जाऊं।" वीर्य सिंह कहने लगा—"यहाँ से दो राहें हैं, एक सीधी किन्तु भयानक है इक्का दुक्का आदमी नहीं जाते हैं, राह में वनराज सिंह मिलते हैं। दूसरी में कोई भय नहीं है परन्तु उससे पाटन पहुँचने में ज्यादा समय लगता है।" जगदेव ने कहा—"मैं उसी राह से पाटन को जाऊंगा जिससे जल्दी पहुंच सकूं।" यह कह कर वह घोड़े पर सवार हुआ। वीरमती भी संग हुई क्योंकि वह भी बड़ी हठीली थी, उस ने माता पिता किसी का कहना न माना। वीर्यसिंह कुछ दूर मील दो मील तक पहुंचाने को आया, अन्त को घोड़े आदि सभी लौटा लाया।

जगदेव को वीरमती ने बहुत समझाया कि इस निकट की राह से चलना ठीक नहीं परन्तु उसने न माना। वीरमती अपने पति के निडरपन को देखकर बहुत प्रसन्न हुई और कहने लगी—"कुमार जी धन्य है तुम्हारी माता को जिसके उदर से तुम जैसे पुत्र पैदा हुए। चलो मैं भी सिंहों से नहीं डरती, परन्तु इसका ध्यान रक्खो कि तुम अपने दाहिनी ओर की घास और झाड़ियों को भले प्रकार देखते रहो और मैं बाईं ओर देखती रहूंगी और सब बात बताती रहूँगी।" इस भांति दोनों भयानक राह से चले। जब रात आती तो जंगल के वृक्षों को काट कर चकमक से अग्नि प्रज्वलित कर लेवे। जंगल के पशु अग्नि के डर से पास न आते। इस भांति कई दिन बीत गये। एक दिन राह में एक सिंह दिखाई दिया। जगदेव ने ललकारा। सिंह छलाँग भरता हुआ ऊपर आया परन्तु जगदेव की कमान से सनसनाता

हुआ तीर उसकी आँख में ऐसा लगा कि आँख फूट गई और दूसरे तीर ने उसको परलोक गमनकरा दिया। पास ही सिंहनी बैठी थी उसने अपने नर की यह हालत देखी और तड़फती हुई वीरमती के ऊपर आई। यह भी बिलकुल तैय्यार थी इसकी कमान तीर ने सिंहनी को भी वहीं गिरा दिया और उसने तड़फ तड़फ कर जान देदी, इससे पति-पत्नी दोनों अत्यन्त प्रसन्न हुए। वीरमती हंसकर कहने लगी—"प्राणनाथ ! ऐसे शिकार से कैसा चित्त प्रसन्न होता है !"

सिंहों को मार कर वे आगे बढ़े और उन्होंने एक बहुत सुन्दर सरोवर देखा। घोड़ों को वृक्षों से बांध कर वे आराम करने को वहाँ बैठ गये।

जगदेव और उसकी धर्मपत्नी अभी उसी सरोवर के किनारे पर बैठे थे कि वीर्य्य अपने पिता के पास गया और जब उसने सुना कि जगदेव अकेला भयानक राह से गया है तो राजा का हृदय भय से कम्पायमान हो गया और वह कहने लगा—"तूने बड़ी भूल की इधर से उनको जाने ही क्यों दिया, हा ! शोक ! कि कन्या और उसका पति दोनों ही इस समय सिंह के वश में होंगे।" वह बहुत ही शोकातुर हुआ और रानियाँ घबराईं। राजा ने उसी समय तीन सौ सवार लेकर वीर्य्य को भेजा कि जगदेव को जाकर देखो। वह उनके पावों के निशान का अनुसरण करता हुआ चला। राह में रुधिर की बूंदें पाईं, पहिले तो वह बहुत डरा कि कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि जगदेव वा वीरमती में कोई मारा गया, परन्तु जब आगे बढ़ा तो एक

ओर सिंह और दूसरी ओर सिंहनी को मरा पड़ा पाया तो अत्यन्त प्रसन्न हुआ। आगे बढ़कर देखा तो दो पथिक सरोवर के किनारे पर दिखाई दिये। दोनों उठे और प्रेम से गले मिले। बीर्य ने कहा—"जगदेव, आप असल क्षत्री हैं। इन दुष्टों ने सैकड़ों का वध किया था और कोई भी इन को वश में न कर सका था।" जगदेव ने मुस्करा कर कहा—"देखो इन सिंहों की मारने वाली यह असल क्षत्राणी है, यदि यह संग न होती तो मेरी आँखों को सिंह दिखाई भी न देता। सिंह से सिंहनी ज्यादा भयानक होती है, बीरमती ने सिंहनी को मारा है।" बीर्य ने अपनी बहिन की ओर आश्चर्य और हर्ष की दृष्टि से देखा और अपने गृह को लौट गया।

स्त्री पुरुष पाटन नगर के निकट पहुँचे। घोड़ों को तो वृक्षों से बाँध दिया और राजकुमार बीरमती को समझा बुझा कर नगर में आया कि कोई घर किराये पर लें। जिस स्थान पर घोड़े बंधे थे वहां एक सरोवर था जिसका नाम सुरलिंग सरोवर था।

जगदेव अभी नगर में गृह की खोज में है। बीरमती चारजामें पर बैठी राह देख रही थी। दैवगति कि उन दिनों पाटन देश में जामवती नाम एक राजवेश्या रहती थी जिस के जाल में नगर के बहुत से युवा पुरुष फंस गये थे। उस की एक दासी इस ओर आ निकली। बीरमती को अति सुन्दरी देखकर उसके मुख में जल भर आया, पास आकर उसने पूछा—"बाई ? तू कौन है ? इन घोड़ों के सवार कौन हैं ? कहाँ गये हैं ?" बीरमती ने जिसकी अभी

थोड़ी सी ही अवस्था और जिसने अभी दुनियाँ के ऊंच ऊंच नीच कुछ नहीं देखे थे, बड़ी साधुता से अपनी सब हाल कह दी। लौंडी प्रसन्न हुई, यह भोला-भाला शिकार अब कहां जा सकता है? वह वेश्या के पास गई और वीरमती का हाल कह सुनाया। वेश्या अपनी बीस पच्चीस सुन्दर लौंडियों को खूब सुन्दर आभूषण आदि पहना कर और आप भी अच्छे वस्त्र धारण करके रथ पर बैठी और धोखे से उसको घर लाना चाहा। रथ के संग कई सुन्दर आदमी एक खास किस्म की पोशाक पहिने हुए थे। वह बड़े ठाठ से राज विधि के अनुसार वहाँ पहुंची। सरोवर के किनारे कनात खिंच गई और जामवती इस लौंडी को संग लिये हुए वीरमती के पास पहुँच कर कहने लगी—"बहू उठो मैं यहां की रानी हूँ और जगदेव की बूआ और तेरी फुफुआ सास हूं। उठो मुझ से गले मिलो, मैंने तुम्हारे आने का समाचार अभी सुना इससे रथ लेकर तुम्हें लेने आई हूं। मैं जब गई थी जगदेव का विवाह टोक-टोड़ा में हुआ था। मैं केवल रणधूलि से मिल सकी थी। जगदेव मेरा भतीजा कहाँ है। तुम एक बड़े ऊंचे कुल की कन्या हो। चलो मेरे संग महल में चलो मैं तुमको देखकर बड़ी प्रसन्न हुई हूँ।" वीरमती जानती थी कि सिद्धराज को जगदेव की बूआ व्याही है, वह बड़ी प्रसन्न हुई। परन्तु कहने लगी—"तुम्हारा भतीजा आता होगा मुझे न पाकर अत्यन्त दुःख में पड़ जायगा।" जामवती बोली—"घबराने की कोई बात नहीं, मेरे आदमी यहाँ रहेंगे वह उसको संग ले आवेंगे।"

यह कहकर वह वीरमती को अपने घर लाई, वेश्या का

घर भी महल से कम न था। इसके शृंगार की वस्तुओं को देखकर वीरमती को बड़ा आश्चर्य हुआ। जामवती ने इस भाँति पहले ही सब बन्दोबस्त कर रक्खा था जिसमें कि वीरमती को कुछ संशय न हो। सायंकाल का समय आया भोजन बना परन्तु वीरमती ने भोजन न किया, क्योंकि जब तक पति भोजन न कर ले तब तक श्रेष्ठ स्त्रियाँ भोजन नहीं करतीं। उसने कई बार पूछा—"बूआ जी, तुम्हारा भतीजा क्यों नहीं आया? जब तक वे भोजन न कर लेंगे तब तक मैं भी न करूंगी।" जामवती ने बाँदियों को इशारा किया वे इधर उधर गईं और फिर लौट आकर कहने लगीं कि "जगदेव को राह में राजा मिल गया था वह वहीं राजा के पास बैठा भोजन कर रहा है और राजा ने कहा है कि वहाँ वीरमती को कोई दुःख न होने पावे। जगदेव को हमारे पास कुछ दुःख न होगा।"

लौंडियों ने यह बातें कुछ ऐसे ढंग से कही थीं कि इस में वीरमती को कुछ भी संशय उत्पन्न न हुआ और उसने फिर थोड़ा सा भोजन कर लिया और फिर दिल बहलाने की बातें होने लगीं।

रात के ९—१० बज गए परन्तु जगदेव नहीं आया, वीरमती घबराई। परन्तु जामवती ने तसल्ली देकर कहा—"बेटी, तू किसी पराए घर में तो आई ही नहीं है, मेरा भतीजा आता होगा यदि तुमको नींद लगी है तो जाकर ऊपर के कमरे में सो रहो।"

ऊपर सोने के लिये बड़ी सुन्दर चारपाई और हर तरह की आराम की वस्तुएं थीं। वीरमती जाकर चारपाई पर लेट रही।

जामवती का नगर के कोतवाल के लड़के से प्यार था दस बजे रात को वह आया। जामवती ने वीरमती का सब हाल उससे कहा इस लड़के का नाम लालकुंवर था। वह शराब के नशे में बिलकुल बेहोश था। लौंडी ने जाकर दरवाजा खटखटाया—"वह दरवाजा खोल दे राजकुमार आवतु हैं।" किवाड़ खुलते ही तुरन्त लालकुंवर कमरे में आया और फिर बाहर से लौंडी ने किवाड़ बन्द कर दिये। जब वीरमती ने लालकुंवर को देखा, वह धक सी रह गई! धोखा दिया गया! लालकुंवर ने हाथ बढ़ाया, वीरमती के पास कोई अस्त्र शस्त्र नहीं था उसने अपने हाथ से धक्का दे दिया। लालकुंवर तो बिलकुल बेहोश था ही नीचे गिर पड़ा और फिर उसी समय सिंहनी की भाँति पकड़ कर उसकी कमर से तलवार निकाल कर वीरमती ने उसका सिर काट लिया और भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। वह हृदय में बहुत भयभीत थीं परन्तु प्रसन्न भी बहुत थी कि ईश्वर की दया से मेरे पतिव्रत धर्म को कोई हानि नहीं पहुंची। वह सोचती हुई लालकुंवर के मृतक शरीर के पास बैठी रही। इतने में आधी रात हो गई चौकीदार बोलने लगे। उसने सोचा—"इस दुष्ट ने मुझे धोखा दिया है, मुझे भी कुछ करना चाहिये।" इसने लालकुंवर के शरीर को उठाकर खिड़की की राह बाहर सड़क पर फेंक दिया। चौकीदार चारों ओर से दौड़े। उन्होंने समझा कोई चोर चोरी करने को घर में घुसा था पांव फिसल कर गिर गया और मर गया। वह उस मृतक शरीर को उठाकर कोतवाली में लाये। जिस समय कोतवाल और उसके संगियों ने उसे देखा उनको बड़ा आश्चर्य [illegible] समय चारों ओर आदमी दौड़ाये गए। लोगों

ने कहा वह जामवती के घर गया था। आदमी उसके यहाँ आये। उसने कहा कि वे हमारे यहां आये थे? और ऊपर एक स्त्री के संग सो रहे हैं।

आदमियों ने दरवाजे को खटखटाया परन्तु कुछ उत्तर न मिला। तब जामवती स्वयं आकर कहने लगी—"दरवाजा खोल दो।" तब वीरमती ने उत्तर दिया—"अरी दुष्ट ! तू ने एक क्षत्री कन्या से ऐसा धोखा किया ! मेरे पतिव्रत भाव को भंग करना चाहा था। तू नहीं जानती मैं वीरमती हूं। तुझको तेरे सारे कुटुम्ब के संग नाश कर दूंगी और तुझको भी वहीं भेजूंगी जहां वह निर्लज्ज लड़का गया है।"

जामवती का हृदय कम्पायमान हो गया। उसने समझा कि कोतवाल का लड़का मारा गया। आदमियों को भी ज्ञात हो गया कि इस दुष्ट ने किसी ठकुरानी को फाँस लिया था जिसका परिणाम यह हुआ कि कोतवाल का लड़का मारा गया। बात चीत करते सवेरा होगया परन्तु वीरमती ने दरवाजा न खोला। अन्त को एक खिड़की पोच थी उसकी राह एक मनुष्य ने भीतर जाने का इरादा किया।

वीरमती की तलवार बिजली की भांति चमकी और उसका सिर तन से अलग जा पड़ा। दूसरे ने फिर घुसने का साहस किया उसका भी इसी भाँति अन्त हुआ। इस प्रकार पाँच मनुष्य मारे गये। अब तो किसी को मकान में जाने का साहस न हुआ। सब के हृदय काँप गये और हाथ पाँव फूल गये।

तब इसकी खबर सिद्धराज को दी गई। उसने कहला भेजा—"जिस समय तक मैं स्वयं वहाँ न आ लूं तब तक

कुछ कार्य्यवाही मत करो ।" और सब वहीं उसकी बाट देखने लगे ।

अब जगदेव का भी हाल सुन लीजिये। वह मकान की खोज में नगर को आया । एक घर किराये पर लिया परन्तु लौटने पर जब घोड़ों को न पाया और न वीरमती को तो बहुत घबराया । हे परमेश्वर ! क्या हो गया वीरमती को कौन हर ले गया ? वह देर तक इधर उधर ढूंढता रहा कहीं राज्य अस्तबल के दारोगा ने उसको देख लिया । उसने पास बुलाकर पूछा—"तू कौन है ?" जगदेव बोला—"परदेशी, नौकरी के लिये यहाँ आया हूं ।" उसने प्रसन्नता पूर्वक उसको अपने नीचे नौकर रख लिया और इस प्रकार इससे सिद्धराज शीघ्र मिल गया । परन्तु बेचारा जगदेव बड़ा दुखी था ।

दो०—छिन में बाढ़े छिन घटे, छिन आधा छिन लीन ।
दाता ने क्या सोचिया, क्या चंदा को दीन ॥

इसे रात्री के समय बिलकुल चैन न पड़ी । सारी रात करवटें बदलते ही बीती, अस्तबल के दारोगा ने अपने घर से उसके लिये भोजन भिजवाये परन्तु उसने छुए तक नहीं ।

जैसे तैसे रात व्यतीत हुई । सबेरे राजा ने सवारी के लिये घोड़ा मंगाया । जगदेव स्वयम् ही घोड़े को ले गया । सिद्धराज उसके ढंग से बहुत प्रसन्न हुआ परन्तु यह सोच कर कि यह कोई हमारा ही ठाकुर होगा उसने कोई बात न पूछी ।

थोड़ी देर पश्चात् सिद्धराज जामवती के घर आया ...बल का दारोगा और जगदेव दोनों घोड़ों पर सवार

राजा के पीछे २ थे। सिद्धराज ने जब सुना कि घर के भीतर कोई राजपूतनी है जिसको धोखा दिया गया है तो वह दरवाजे पर आकर स्वयं कहने लगा—"बेटी ! तू बता तो सही तू कौन है ? तू किसकी धर्मपत्नी है, तेरे सास श्वसुर कहाँ रहते हैं ? डर मत, मैं यहाँ का राजा हूँ।" वीरमती ने भीतर से कहा—"महाराज ? मैं वीरमती हूँ, टोकटोड़ा के राजा की पुत्री, धारा नगरी के राजपुत्र की बहू और वीर्य की बहिन हूँ।" राजा बोला—"तूने हमारे आदमियों को क्यों मार डाला ?" वह बोली—"इस दुष्टा ने मुझसे कहा था कि मैं यहाँ की रानी और तेरी फूफी हूं।" वह मुझको धोखा देकर यहाँ लाई और मेरे पतिव्रत धर्म को भंग करना चाहा। मरता क्या न करता। मरने मारने के अतिरिक्त और क्या करती ? जब तक शरीर में जीव है तब तक मुझको पतिव्रत धर्म से कोई नहीं गिरा सकता। मेरा पति नगर में घर की खोज में गया था जब तक वह न आवेगा मैं दरवाजा न खोलूंगी। प्रथम आप उसको बुलवाइये।"

इतने में जगदेव आगे बढ़ा—"प्रिये ! मैं आ गया दरवाजा खोल दे। तुझको बड़ा कष्ट हुआ।" अभी ये शब्द मुख से निकलने भी न पाये थे कि दरवाजा खुल गया और वह राजपूतिनी जो अभी तक सिंह की भाँति कठोर हृदय बनी थी रोती २ बाहर निकली और जगदेव के शरीर से लिपट गई। और बोली—"प्राणनाथ ! सचमुच यह समय अत्यन्त कष्ट का था।" इनका प्रेम देखकर सिद्धराज का हृदय भी मोम की नाईं पिघल गया और वह वीरमती से कहने लगा—"आज से तू मेरी धर्म की बेटी है। चल अब सच्चे राजमन्दिर में रह।" राजमन्दिर की दासियों ने उसको

रथ पर बिठाया और वह वहाँ अत्यन्त आदर सन्मान के साथ रहने लगी । फिर तो वीरमती के पतिव्रत भाव की हर जगह धूम मच गई ।

सिद्धराज ने कोतवाल की तो सब धन सम्पत्ति छीन ली और जामवती तथा उसकी सब वेश्याओं के नाक कान कटवा कर अपने नगर से निकाल दिया । और फिर जगदेव से सब हाल पूछकर अपना विश्वास पात्र बनाया और एक मोतियों का हार इनाम में दिया । जगदेव ने उसे अस्तबल के दरोगा के सुपुर्द कर दिया क्योंकि उसके ही कारण वह राजा का विश्वासी बना था । फिर यह दिन उनका इसी प्रकार चैन प्रमोद से बीत गया और रात्रि दम्पति निश्चिन्तता से सोए।

दूहरे दिन सवेरे को अभी कुछ रात शेष रही थी कि वीरमती उठी और स्नान आदि नित्य कर्म से निवृत्त होकर भोजन बनाया, और फिर जगदेव को जगाया। वह कहने लगा—"तुमने इतने सवेरे क्यों जगाया ?" वीरमती ने कहा—"मैंने तीन दिन से कुछ भोजन नहीं किया है । प्रातः काल ही तुम को राजा बुलावेगा । न मालूम किस समय आप वहाँ से लौटें। इस कारण मैंने यह अपराध किया ।" फिर दोनों ने भोजन किये और थोड़ी देर के पश्चात् राजा का आदमी बुलाने आया । जगदेव वहाँ चला गया और सांयकाल तक घर न आ सका ।

सिद्धराज ने जगदेव का बड़ा आदर सम्मान किया । माकूल तनख्वाह की गई और सरदार की जगह वे वहाँ बड़े आनन्द से रहने लगे । वीरमती के उदर

से दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम जगधूलि और बीजधूलि थे। सिद्धराज उनको बहुत प्यार करता था और इनमें क्षात्र गुण कूट २ कर भरे थे।

जगदेव सिद्धराज का बड़ा कृतकार्य और विश्वासपात्र था। एक दिन सिद्धराज ने अपने मन में विचार किया लाओ इसकी परीक्षा करें। वह समय ऐसा था कि लोग भूत प्रेत पिशाच, डाकिनी, शाकिनी आदि वीसियों को मानते थे। राजा ने कहा लाओ इन्हीं से अपना काम सिद्ध करें।

जगदेव राजा का बाडीगार्ड (अंगरक्षक) सिपाही था। भादों की एक रात को जब झम २ वर्षा हो रही थी राजा ने किसी स्त्री के रोने का शब्द सुना। उसने पहरे वालों को बुलाया परन्तु केवल जगदेव खड़ा था और कोई न था। राजा ने उसको आज्ञा दी कि "जाओ, देखो यह किसके रोने का शब्द है?" जगदेव गया और देखा कि कुछ स्त्रियाँ रो रही हैं। पूछा—"माताओं, आप क्यों ऐसा विलाप करती हो? आपके रोदन का क्या कारण है जिससे तुम इतनी दुःखी हो?" उन्होंने कहा"—सिद्धराज की आयु अब बीत गई अब वह परलोक को सिधार जायगा। यदि तुम अपनी पत्नी और सन्तान सहित इस यन्त्र में बैठकर कट मरो जो देवी के मन्दिर के सामने बना है, तो यह बीस वर्ष और जी सकता है।" जगदेव ने कहा—"यह क्या तुच्छ सी बात है! चलो हम राजाजी के हित के लिये ऐसा करने को उद्यत हैं।' फिर वह घर पर आया और वीरमती को सारा वृत्तांत कह सुनाया। उसने भी इसे मान लिया। दोनों बालक भी कहने लगे—"पिताजी मालिक के कार्य के लिये जान देना क्षत्रीपन का धर्म है। जब माता पिता प्राण त्यागने

को उद्यत हैं तो हम कैसे पीछे रह सकते हैं । हम एक पग पहिले धरेंगे और मालिक की कार्य सिद्धि के लिये प्राण त्याग करेंगे और इस भाँति स्वर्गग्राम को प्रस्थान करेंगे ।" ये चारों इस प्रकार बात चीत करके यहाँ आये जहाँ यह यन्त्र था । वे स्त्रियाँ अभी तक वहीं खड़ी थीं वीरमती और जगदेव ने दोनों बालकों को मध्य में कर लिया और अपने सिर प्रसन्नता पूर्वक यन्त्र में धर दिये और स्त्रियों से कहा—"अपना कार्य आरम्भ करो ।"

सिद्धराज गुप्त रूप से यह सब कार्यवाही देख रहा था। उसने स्वयं वहाँ आकर उनको उस यन्त्र से छुटकारा दिलाया । बालकों और जगदेव को छाती से लगाकर कहने लगा—"वीर पुरुषों! तुम धन्य हो, तुम्हारी राजभक्ति धन्य है, ऐसे सच्चे और राज-भक्त संगी कहाँ मिलते हैं ? तुम्हारा जीवन बड़ा अमूल्य है मैं कैसे इसको खो सकता हूँ।" फिर उसने वीरमती की ओर देखा और उसके उत्साह की प्रसंशा की । वीरमती का शेष जीवन जगदेव की सेवा में व्यतीत हुआ और वह जीवन सचमुच पवित्र जीवन था।

हे श्रेष्ठ आर्य्यों की संतान! जरा देखो ये कैसे पुरुष थे। ये वे पुरुष थे जिनसे किसी देश और जाति की शोभा बन सकती है। क्या तुम इनके थोड़े से जीवन से अच्छी शिक्षा ग्रहण न करोगे ? यद्यपि तुम अपने कर्म धर्म को बिलकुल छोड़ चुके हो तथापि आशा है तुम अवश्य अब अपने पुरुषाओं के नाम को बट्टा न लगाओगे ।

———

चंचलकुमारी

दो०—अपने कुल को याद कर, कहां है तेरी ठांव ।
ऐसो अनुचित क्यों करे, कि बूड़े कुल की नाव ॥

अहाहा ! देखो तो आज तुम्हें एक ऐसी वीर स्त्री का जीवन चरित्र सुनाते हैं कि जिससे तुम्हारे भी अवश्य ही रोमांच खड़े हो जायं और तुमको लज्जा आवे और जातीय अभिमान तुम में एक ऐसा गुण उत्पन्न करे कि जिससे बुरे और घृणित कार्यों को तुम न करो और स्वाभिमान तुम में मनुष्यत्व के गुण उत्पन्न करदे।

यह कोई झूंठी कहानी (नावेल) नहीं है और न किसी ने इसको ऐसे ही ठाले बैठे गढ़न्त की है किन्तु यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है और इस कारण से तुम्हारे लिये भी अवश्य ही लाभदायक होगा।

चंचलकुमारी रूपनगर के राजा विक्रमसिंह की कन्या थी। इस पर 'यथा नाम तथा गुणः' अत्यन्त फबता था यह बड़ी सुन्दर थी। होनहार, साहसी और तीव्रबुद्धि थी। रूपनगर एक छोटी सी राजधानी थी, केवल सौ गाँव राजा के थे। परन्तु वह राजा किसी उच्च कुल में उत्पन्न हुआ था और असली क्षत्री का पुत्र था। यद्यपि विक्रमसिंह कोई बड़ा साहसी, उच्च आशय वाला मनुष्य न था किन्तु पुराने क्षत्रियों के संस्कारों, और उनकी पवित्रता का असर उसके खानदान में पाया जाता था चंचलकुमारी एक उच्च श्रेणी की राजपूतनी थी। यद्यपि उसका शरीर स्थूल था तथापि वह आदर्श हिन्दू रमणी थी। चंचल अपनी सहेलियों के

साथ प्रसन्नता पूर्वक आयु व्यतीत करती थी। दुनियां का किसी आपत्ति का अभी तक उसको सामना करना न पड़ा था और वह यह जानती तक न थी कि संसार में कोई आपत्ति होती भी है अथवा नहीं ? सारांश कि उसको सांसारिक कोई चिंता न थी परन्तु आप जानते हैं दुनियां भी तो दुरंगी है जैसे कि किसी कवि ने कहा है:—

दुरंगी ज़माने की मशहूर है।
कहीं साया है और कहीं धूप है॥

एक समय ऐसा आया जिससे उसके शिर पर आपत्तियों का पहाड़ डाल दिया परन्तु हम स्वयं उसे आपत्ति 'न कहेंगे, क्योंकि यदि ऐसा न हुआ होता तो हम या दूसरे लोग उसको जानते तक नहीं। इसी से हमको एक पवित्र और सच्ची क्षत्राणी का जीवन चरित्र प्राप्त हुआ जो हमको याद दिलाता है कि पहले हिन्दू मातायें ऐसी होती थीं, हिन्दू स्त्रियों का ऐसा धर्म हुआ करता था और स्वाभिमानी, किसी के आगे मस्तक न टेकने वाली सच्ची क्षत्राणियां ऐसी होती थी।

एक दिन राजा के महल में कोई विसातिन आई जिसके पास भाँति २ की सुन्दर और रंगीन तसवीरें थीं जो कि हाथी दाँत की तख्तियों पर बड़ी सुन्दरता से काढ़ी गई थीं। महल की लड़कियों ने उसे चारों ओर से आकर घेर लिया। वे केवल तसवीरें ही नहीं देखती थीं किन्तु जैसा कि दस्तूर है उस बुड्ढी के संग हंसती भी जाती थीं, यहां तक कि बुड्ढी घबरा गई और कहने लगी—"तुम मुझको न सताओ। यह तसवीरें मैं तुम्हारे लिये नहीं बल्कि राजकुमारी चंचल देवी के लिये लाई हूँ।

यह कह कर उसने उसको पिटारी में बन्द कर लिया। इतने में सब लड़कियां बिलकुल चुपचाप होगईं बुड्ढी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह लड़कियाँ आप ही आप कैसी चुप हो गईं। परन्तु जब उसने फिर कर देखा तो एक बड़ी युवा लड़की पीछे आती मालूम हुई। उसको देखकर लड़कियाँ सहम गईं और फिर किसी को बूढ़ी के छेड़ने का साहस न हुआ। यह लड़की स्वयं ही तसवीर सी थी, मानो नख से शिख तक साँचे में ढली थी और ऐसी मालूम होती थी कि मानो संगमरमर की सुन्दर मूर्ति हरकत करती है।

यह लड़की चंचलकुमारी थी। उसने आते आते ही कहा—"जो तसवीरें तुम मेरे लिये लाई हो केवल उन्हीं को दिखाओ।" बूढ़ी ने अकबर, शाहजहां, जहाँगीर, नूरजहाँ आदि की तसवीरें दिखाईं। चंचल बोली—"यह तो हम ने देख लिया परन्तु क्या तुम्हारे पास हिन्दुओं की तसवीरें नहीं हैं?" उसने कहा—"जरा ठहरिये मैं अभी दिखलाती हूं।" और उसने एक बण्डल से राजा मानसिंह, वीर जगतसिंह आदि की तसवीरें दिखाईं। चंचल ने कहा—"यह हिन्दुओं की तसवीरें नहीं हैं, यह तो बादशाह के नौकरों की हैं। फिर उस बुड्ढी ने राना प्रतापसिंह, राना अमरसिंह, राना करणसिंह, राना जसवंतसिंह आदि की तसवीरें दिखाईं। उन सबको चंचल ने मोल ले लिया और इच्छानुसार बहुत अच्छे दाम दिये। बूढ़ी ने एक तसवीर जान बूझकर छिपा रक्खी थी यह नहीं दिखाई। चंचल ने बड़े आश्चर्य से कहा—"यह तसवीरें तुमने क्यों नहीं दिखाईं?" बूढ़ी ने हाथ जोड़ कर कहा—"राजकुमारी, यह तसवीर तुम्हारे शत्रु की है, इस कारण मैंने तुमको नहीं दिखलाई। चंचल बोली—

"किस की है ?" बिसातिन ने कहा—"यह उदयपुर के महाराज राना राजसिंह की है।" चंचल मुसकरा कर कहने लगी—"राजसिंह बड़ा वीर और मनचला है तथा राजपूत जो वीर होते हैं किसी स्त्री से वैर नहीं करते । ला ! यह तसवीर में मोल लूंगी क्योंकि यह एक ऐसे राजा की है जिसको अपने हिन्दूपन का सदा से अभिमान है ।" बात यह थी कि किसी कारण से उदयपुर के रानाओं और रूपनगर के राजाओं में मुद्दत से अनबन चली जाती थी। इस कारण से बूढ़ी बिसातिन ने राजसिंह को चंचल का शत्रु कहा था।

बिसातिन से तसवीर लेकर चंचल ने उसको अच्छी तरह देखा । उसकी बनावट को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई उसने अपनी सहेलियों को दिखा कर कहा—"देखो, यह एक असली हिन्दू की तसवीर है । कितनी अच्छी है ? शक्ल से कैसा बांकापन बरसता है ।" फिर उसने बिसातिन से उसका मूल्य पूछा । चंचल की तबीयत देखकर उसने उसका मूल्य औरों से दुगना कहा । सब लड़कियाँ कहने लगीं—"इसमें तुमने खूब दुगने किये।" बिसातिन कहने लगी—"यह उसकी वीरता की न्योछावर भी तो नहीं है, और यदि तुम दूसरे वीरों की तसवीरें देखना चाहती हो तो लो मैं दिखाती हूं।" यह कह कर उसने औरंगजेब की तसवीर निकाली जो उस समय का बड़ा चतुर और ताक़तवर शहनशाह था और कहा—"यह तसवीर भी मोल ले लो ।" परन्तु उस समय राजपूताने की क्षत्राणियाँ देहली के मुसलमान बादशाहों के नाम से चिढ़ती थीं । यह सब लड़कियां हंस कर कहने लगीं—"इसकी गरदन झुकी है ।" उसमें से एक ने हंसी २ में उसे भूमि पर गिरा कर अपने

पाँव से कुचल दिया। चंचलकुमारी को यह हंसी भली न लगी। उसने कहा—"यह भलमंसी का काम नहीं है।" बिसातिन ने कहा—"यदि यह खबर बादशाह को पहुँच गई तो रूपनगर के किले की एक ईंट न मिलेगी।" कहां तो चंचलकुमारी अभी तक औरों को समझा रही थी पर अब उसको बिसातिन की बात पर क्रोध आ गया और हंस कर बोली—"सब लड़कियाँ एक तरफ से बारी २ इस तसवीर पर लातें मारो।" राजपूताने में लड़कियाँ कभी २ लड़कों का पुतला बनाकर उस पर नाचा करती थीं। यही बरताव बादशाह की तसवीर के संग किया गया। बिसातिन के होश उड़ गये यह डरी कि कहीं उसके दाम भी न मारे जावें। परन्तु चंचल ने उसके दाम देकर उसको विदा किया।

यह हंसी की बातें थी जो सचमुच एक बचपन की नादानी थी, परन्तु इससे चंचल के अगले जीवन में कई शिक्षाप्रद बातें पैदा हो गईं। बिसातिन तसवीरें बेचने देश २ को जाया करती थी। कुछ दिन पश्चात् वह देहली लौट कर गई, क्योंकि वहां उसके लड़के की दूकान थी। और वहीं से वह तसवीरें ले जाया करती थी उसके मुहल्ले में एक स्त्री रहती थी जिसका नाम दरिया बीबी था। वह शाही महल में सुरमा बेचने जाती थी। बिसातिन ने बातों ही बातों में रूपनगर की युवा राजकुमारी का सब किस्सा सुना दिया।

उसका शायद यह अभिप्राय न हो। कि यह खबर बादशाह को पहुंच जाय। परन्तु दरिया बीबी ने यह खबर बाद-

"किस की है ?" विसातिन ने कहा—"यह उदयपुर के महाराज राना राजसिंह की है।" चंचल मुसकरा कर कहने लगी—"राजसिंह बड़ा वीर और मनचला है तथा राजपूत जो वीर होते हैं किसी स्त्री से वैर नहीं करते। ला! यह तसवीर मैं मोल लूंगी क्योंकि यह एक ऐसे राजा की है जिसको अपने हिन्दूपन का सदा से अभिमान है।" बात यह थी कि किसी कारण से उदयपुर के रानाओं और रूपनगर के राजाओं में मुद्दत से अनबन चली जाती थी। इस कारण से बूढ़ी विसातिन ने राजसिंह को चंचल का शत्रु कहा था।

विसातिन से तसवीर लेकर चंचल ने उसको अच्छी तरह देखा। उसकी बनावट को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने अपनी सहेलियों को दिखा कर कहा—"देखो, यह एक असली हिन्दू की तसवीर है। कितनी अच्छी है? शक्ल से कैसा बांकापन बरसता है।" फिर उसने विसातिन से उसका मूल्य पूछा। चंचल की तबीयत देखकर उसने उसका मूल्य औरों से दुगना कहा। सब लड़कियाँ कहने लगीं—"इसमें तुमने खूब दुगने किये।" विसातिन कहने लगी—"यह उसकी वीरता की न्योछावर भी तो नहीं है, और यदि तुम दूसरे वीरों की तसवीरें देखना चाहती हो तो लो मैं दिखाती हूं।" यह कह कर उसने औरंगजेब की तसवीर निकाली जो उस समय का बड़ा चतुर और ताक़तवर शहनशाह था और कहा—"यह तसवीर भी मोल ले लो।" परन्तु उस समय राजपूताने की क्षत्राणियाँ देहली के मुसलमान बादशाहों के नाम से चिढ़ती थीं। यह सब लड़कियां हंस कर कहने लगीं—"इसकी गरदन झुकी है।" उसमें से एक ने हंसी २ में उसे भूमि पर गिरा कर अपने

पाँव से कुचल दिया। चंचलकुमारी को यह हंसी भली न लगी। उसने कहा—"यह भलमंसी का काम नहीं है।" विसातिन ने कहा—"यदि यह खबर बादशाह को पहुँच गई तो रूपनगर के किले की एक ईंट न मिलेगी।" कहां तो चंचलकुमारी अभी तक औरों को समझा रही थी पर अब उसको विसातिन की बात पर क्रोध आ गया और हंस कर बोली—"सब लड़कियाँ एक तरफ से बारी २ इस तसवीर पर लातें मारो।" राजपूताने में लड़कियाँ कभी २ लड़कों का पुतला बनाकर उस पर नाचा करती थीं। यही बरताव बादशाह की तसवीर के संग किया गया। विसातिन के होश उड़ गये वह डरी कि कहीं उसके दाम भी न मारे जायँ। परन्तु चंचल ने उसके दाम देकर उसको विदा किया।

यह हंसी की बातें थी जो सचमुच एक बचपन की नादानी थी, परन्तु इसमें चंचल के अगले जीवन में कई शिक्षाप्रद बातें पैदा हो गईं। विसातिन तसवीरें बेचने देश २ को जाया करती थी। कुछ दिन पश्चात् वह देहली लौट कर गई, क्योंकि वहां उसके लड़के की दूकान थी। और वहीं से वह तसवीरें ले जाया करती थी उसके मुहल्ले में एक स्त्री रहती थी जिसका नाम दरिया बीबी था। वह शाही महल में सुरमा बेचने जाती थी। विसातिन ने बातों ही बातों में रूपनगर की युवा राजकुमारी का सब किस्सा सुना दिया।

उसका शायद यह अभिप्राय न हो। कि यह खबर बादशाह को पहुंच जाय। परन्तु दरिया बीबी ने यह खबर बाद-

"किस की है ?" बिसातिन ने कहा—"यह उदयपुर के महाराज राना राजसिंह की है।" चंचल मुसकरा कर कहने लगी—"राजसिंह बड़ा वीर और मनचला है तथा राजपूत जो वीर होते हैं किसी स्त्री से वैर नहीं करते। ला ! यह तसवीर मैं मोल लूंगी क्योंकि यह एक ऐसे राजा की है जिसको अपने हिन्दूपन का सदा से अभिमान है।" बात यह थी कि किसी कारण से उदयपुर के रानाओं और रूपनगर के राजाओं में मुद्दत से अनबन चली जाती थी। इस कारण से बूढ़ी बिसातिन ने राजसिंह को चंचल का शत्रु कहा था।

विसातिन से तसवीर लेकर चंचल ने उसको अच्छी तरह देखा। उसकी बनावट को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने अपनी सहेलियों को दिखा कर कहा—"देखो, यह एक असली हिन्दू की तसवीर है। कितनी अच्छी है ? शक्ल से कैसा बांकापन बरसता है।" फिर उसने बिसातिन से उसका मूल्य पूछा। चंचल की तबीयत देखकर उसने उसका मूल्य औरों से दुगना कहा। सब लड़कियाँ कहने लगीं—"इसमें तुमने खूब दुगने किये।" बिसातिन कहने लगी—"यह उसकी वीरता की न्योछावर भी तो नहीं है, और यदि तुम दूसरे वीरों की तसवीरें देखना चाहती हो तो लो मैं दिखाती हूं।" यह कह कर उसने औरंगजेब की तसवीर निकाली जो उस समय का बड़ा चतुर और ताक़तवर शहनशाह था और कहा—"यह तसवीर भी मोल ले लो।" परन्तु उस समय राजपूताने की क्षत्राणियाँ देहली के मुसलमान बादशाहों के नाम से चिढ़ती थीं। यह सब लड़कियां हंस कर कहने लगीं—"इसकी गरदन झुकी है।" उसमें से एक ने हंसी २ में उसे भूमि पर गिरा कर अपने

पाँव से कुचल दिया। चंचलकुमारी को यह हंसी भली न लगी। उसने कहा—"यह भलमंसी का काम नहीं है।" विसातिन ने कहा—"यदि यह खबर बादशाह को पहुँच गई तो रूपनगर के किले की एक ईंट न मिलेगी।" कहां तो चंचलकुमारी अभी तक औरों को समझा रही थी पर अब उसको विसातिन की बात पर क्रोध आ गया और हंस कर बोली—"सब लड़कियाँ एक तरफ से बारी २ इस तसवीर पर लातें मारो।" राजपूताने में लड़कियाँ कभी २ लड़कों का पुतला बनाकर उस पर नाचा करती थीं। यही बरताव बादशाह की तसवीर के संग किया गया। विसातिन के होश उड़ गये यह डरी कि कहीं उसके दाम भी न मारे जावें। परन्तु चंचल ने उसके दाम देकर उसको विदा किया।

यह हंसी की बातें थी जो सचमुच एक बचपन की नादानी थी, परन्तु इससे चंचल के अगले जीवन में कई शिक्षाप्रद बातें पैदा हो गईं। विसातिन तसवीरें बेचने देश २ को जाया करती थी। कुछ दिन पश्चात् वह देहली लौट कर गई, क्योंकि वहां उसके लड़के की दूकान थी। और वहीं से वह तसवीरें ले जाया करती थी उसके मुहल्ले में एक स्त्री रहती थी जिसका नाम दरिया बीबी था। वह शाही महल में सुरमा बेचने जाती थी। विसातिन ने बातों ही बातों में रूपनगर की युवा राजकुमारी का सब किस्सा सुना दिया।

उसका शायद यह अभिप्राय न हो। कि यह खबर बादशाह को पहुंच जाय। परन्तु दरिया बीबी ने यह खबर बाद-

शाह की लड़की जेबुन्निसा को सुनाई जो अपने समय की बड़ी चतुर थी। उसने इस बात को उदयपुरी बेगम से कहा। इस उदयपुरी बेगम का उदयपुर के राजाओं से कोई सम्बन्ध न था किन्तु यह ईसाइन थी और दाराशिकोह के महल में थी। जब दाराशिकोह को औरंगजेब ने मार डाला तो इसको उसने अपनी बीबी बना लिया और यह अन्त समय तक उसकी सिर चढ़ी बनी रही और बादशाह हर बात में उसी की सम्मति ले लिया करता था और जो चिट्ठियाँ अपने लड़कों को भेजता था उसमें कभी २ अपनी इस बीबी की निस्बत भी कुछ लिख देता था। उदयपुरी ने सारा हाल बादशाह को सुनाया और उनसे कसम लेकर कहने लगी—"मैं उस समय आनन्दित होऊंगी जब चंचल यहाँ आकर मेरा पेचवान ठण्डा करे और चिलम भरने का काम करेगी।" जेबुन्निसा ने कहा—"मैं इस लड़की से अपने पांव दबवाऊंगी।" चाहिये तो यह था कि औरंगजेब चुप हो जाता परन्तु वह एक निराली तबियत का आदमी था। उसने रूपनगर के राजा विक्रमसिंह को लिखा कि—"चंचलकुमारी को भेज दो, मैं उसके संग विवाह करूंगा।"

जिस समय यह खबर रूपनगर वालों को मालूम हुई उनमें खलबली पड़ गई। जोधपुर, अम्बर के राजाओं ने अपनी कन्यायें मुगल बादशाहों को दे दी थीं। रूपनगर का राजा तो बिचारा कुछ था ही नहीं। वह तो छोटा सा राजा था। वह कहने लगा—"यदि लड़की शाही महल में जाती है तो कोई हानि नहीं, बादशाहों का एक दूसरे से सम्बन्ध होता ही है और औरंगजेब तो इस समय सारे देश का मालिक है।" परन्तु चंचल को यह बात अच्छी न

लगी और जब उससे यह कहा गया तो उसने कहने वालों को सैकड़ों उलटी सीधी सुना डालीं।

शाही महल की बेगमें जो बातें कहती थीं वह सारे देश में फैल जाती थी। शाही महल में जोधपुर के खानदान की एक स्त्री ब्याही थी, उसी का बेगमों में सब से ज्यादा आदर होता था परन्तु यह प्रसन्न चित्त नहीं रहती थी। आदिरनामे के बमूजिब यह शाही महल में मजहबी रस्मे अदा कर सकती थी यहाँ तक कि मूर्ति तक पूज सकती थी। औरंगजेब इसका बड़ा मान करता था। जब उसने सुना कि बादशाह ने किसी कारण चंचल को बुलाया है तो उसको बड़ा शोक हुआ। वह नहीं चाहती थी कि किसी और हिन्दू स्त्री का अपमान हो। उसने औरंगजेब को बहुत समझाया कि लड़कपन की बातों पर ध्यान देना बादशाह को उचित नहीं। परन्तु यह उसका श्रम सर्वथा व्यर्थ गया। बादशाह ने उसकी एक न सुनी। अन्त को उसने अपनी एक विश्वासपात्र दासी को जिसका नाम देवा था जोधपुर भेजने के बहाने से रूपनगर भेज दिया। उस दासी से चंचल को कहला भेजा—"हिन्दुओं की नाक कट गई। उनको अपने मानापमान का कुछ भी ध्यान नहीं। मैं जब से यहाँ आई हूँ प्रति दिन अपनी मृत्यु माँगती हूँ। अब सुना है कि तू दिल्ली आ रही है बादशाह ने तेरी सब बातें सुन ली हैं। उदयपुरी ने प्रतिज्ञा की है कि तुझ से चिलम भरवाई जायगी और जेबुन्निसा पांव दबवावेगी। क्या तू यह अपमान देख सकेगी? मैं समझती हूँ कि तू एक क्षत्री कुलोत्पन्न कन्या है। तुझको कभी भी ऐसा बर्ताव (अपमान) अच्छा न लगेगा। राजपूताने वाले तो निर्लज्ज

शाह की लड़की जेवुन्निसा को सुनाई जो अपने समय की बड़ी चतुर थी। उसने इस बात को उदयपुरी बेगम से कहा। इस उदयपुरी बेगम का उदयपुर के राजाओं से कोई सम्बन्ध न था किन्तु यह ईसाइन थी और दाराशिकोह के महल में थी। जब दाराशिकोह को औरंगजेब ने मार डाला तो इसको उसने अपनी बीबी बना लिया और यह अन्त समय तक उसकी सिर चढ़ी बनी रही और बादशाह हर बात में उसी की सम्मति ले लिया करता था और जो चिट्ठियाँ अपने लड़कों को भेजता था उसमें कभी २ अपनी इस बीबी की निस्वत भी कुछ लिख देता था। उदयपुरी ने सारा हाल बादशाह को सुनाया और उनसे कसम लेकर कहने लगी—"मैं उस समय आनन्दित होऊंगी जब चंचल यहाँ आकर मेरा पेचवान ठण्डा करे और चिलम भरने का काम करेगी।" जेबुन्निसा ने कहा—"मैं इस लड़की से अपने पांव दबवाऊंगी।" चाहिये तो यह था कि औरंगजेब चुप हो जाता परन्तु वह एक निराली तबियत का आदमी था। उसने रूपनगर के राजा विक्रमसिंह को लिखा कि—"चंचलकुमारी को भेज दो, मैं उसके संग विवाह करूंगा।"

जिस समय यह खबर रूपनगर वालों को मालूम हुई उनमें खलबली पड़ गई। जोधपुर, अम्बर के राजाओं ने अपनी कन्यायें मुगल बादशाहों को दे दी थीं। रूपनगर का राजा तो बिचारा कुछ था ही नहीं। वह तो छोटा सा राजा था। वह कहने लगा—"यदि लड़की शाही महल में जाती है तो कोई हानि नहीं, बादशाहों का एक दूसरे से सम्बन्ध होता ही है और औरंगजेब तो इस समय सारे देश का मालिक है।" परन्तु [illegible] यह [illegible] न

लगी और जब उसने यह कहा गया तो उससे कहने वालों को सैकड़ों उलटी सीधी सुना डालीं।

शाही महल की बेगमें जो बातें कहती थीं वह सारे देश में फैल जाती थीं। शाही महल में जोधपुर के खानदान की एक स्त्री ब्याही थी, उसी का बेगमों में सब से ज्यादा आदर होता था परन्तु वह प्रसन्न चित्त नहीं रहती थी। अहिदनामे के बमूजिब वह शाही महल में मजहबी रस्में अदा कर सकती थी यहाँ तक कि मूर्ति तक पूज सकती थी। औरंङ्गजेब इसका बड़ा मान करता था। जब उसने सुना कि बादशाह ने किसी कारण चंचल को बुलाया है तो उसको बड़ा शोक हुआ। वह नहीं चाहती थी कि किसी और हिन्दू स्त्री का अपमान हो। उसने औरंङ्गजेब को बहुत समझाया कि लड़कपन की बातों पर ध्यान देना बादशाह को उचित नहीं। परन्तु वह उसका श्रम सर्वथा व्यर्थ गया। बादशाह ने उसकी एक न सुनी। अन्त को उसने अपनी एक विश्वासपात्र दासी को जिसका नाम देवा था जोधपुर भेजने के बहाने से रूपनगर भेज दिया। उस दासी से चंचल को कहला भेजा—"हिन्दुओं की नाक कट गई। उनको अपने मानापमान का कुछ भी ध्यान नहीं। मैं जब से यहाँ आई हूँ प्रति दिन अपनी मृत्यु माँगती हूँ। अब सुना है कि तू दिल्ली आ रही है बादशाह ने तेरी सब बातें सुन ली हैं। उदयपुरी ने प्रतिज्ञा की है कि तुझ से चिलम भरवाई जायगी और जेबुन्निसा पांव दबवावेगी। क्या तू यह अपमान देख सकेगी ? मैं समझती हूँ कि तू एक क्षत्री कुलोत्पन्न कन्या है। तुझको कभी भी ऐसा बर्ताव (अपमान) अच्छा न लगेगा। राजपूताने वाले तो निर्लज्ज

हो गये हैं । उनसे जजिया❀ लिया जाता है। उनके राज में गौ-हत्या होती है । बेशक वे एक दूसरे के शत्रु हैं। उनसे तुझे कुछ सहायता न मिलेगी परन्तु हाँ उदयपुर में अब तक हिन्दूपन के चिह्न पाये जाते हैं, राना वीर क्षत्री है । यदि तू उसकी शरण लेगी तो वह अवश्य तेरी सहायता करेगा । और किसी से किसी प्रकार की आशा नहीं है । तू यह न समझना कि मैं तुझे किसी द्वेष के कारण ऐसी शिक्षा करती हूँ । ऐसा सम्भव है कि कोई तुझ से आकर कहे कि जोधपुरी रानी चाहती है कि उसी का पुत्र गद्दी पर बैठे, इसी लिये वह और किसी राजपूतनी को महल में नहीं दाखिल होने देती । नहीं, मुझ को इसका जरा भी ध्यान नहीं । मैं अधर्मी हो गई हूँ, धर्म से पतित होकर दुःख का जीवन भोग रही हूं ।"

देवी ने जाकर यह खबर राजकुमारी को सुनाई । बादशाह का आज्ञा-पत्र भी वहां पहुंच गया था । चंचल उस दिन बड़ी गाढ़ चिन्ता में डूबी रही । उसकी सहेली निर्मलबाई उसके निकट आई और कहने लगी—"बाई जी, चिन्ता करना व्यर्थ है। ईश्वर की ऐसी ही इच्छा थी ।"

चंचल—"सत्य है, ईश्वर की इच्छा ऐसी ही थी ।" किसी का कुछ वश नहीं । परन्तु चाहे कुछ ही क्यों न हो मैं मुगल की लौंडी बनकर नहीं रहने की ।"

निर्मल—"क्या कोई ऐसा उपाय नहीं हो सकता कि तुम दिल्ली न जाओ !"

❀ मुसलमानों के समय में एक कर था जो केवल हिन्दूओं से ही लिया जाता था।

चंचल—"उपाय तो बहुत हैं परन्तु मेरे ना करने से पिता पर आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ेगा । अभी शाही सेना रूपनगर पहुँच कर खून से नदी बहा देगी ।"

निर्मल—"फिर क्या करेंगी ?"

चंचल—"मैं विचारती हूं या तो राह में विष खाकर प्राण त्यागूंगी या दिल्ली पहुंच कर दिखाऊंगी कि एक असल राजपूतनी को छेड़ने का क्या फल है, हंसनी कभी बगुले की पत्नी नहीं बन सकती है ।"

निर्मल—"क्यों न हो आप भी तो एक राजपूतनी हैं, परन्तु एक बात मैं भी कहती हूं कि राना राजसिंह बड़ा दयालु पुरुष है । आप उसको पत्र भेजें वह अवश्य आपकी सहायता करेगा ।"

राजसिंह का नाम सुनना था कि चंचल ने अपनी गर-दन शरम से नीची करली और फिर सोच समझ कर कहने लगी—"राजस्थान में केवल वही तो एक क्षत्रियों का कुल है जिसको अपने हिन्दूपन का कुछ ध्यान है । राजसिंह बड़ा बीर पुरुष है परन्तु औरङ्गजेब से उसका क्या मुकाबिला । जोधपुरी रानी ने भी अपनी बांदी से यही कहला भेजा है । परन्तु मैं सोच रही हूं कि कहीं ऐसा तो न होगा कि मेरे कारण रूपनगर और उदयपुर दोनों संकट में पड़ें । क्योंकि राना राजसिंह श्री की दीन वाणी सुनकर तुरन्त जान जोखों में डाल देगा । जीत हार तो ईश्वराधीन है परन्तु वह कभी लड़ाई से मुख न मोड़ेगा । दूसरी बात यह है कि हमारा बाप कभी उदयपुर से सहायता लेना नहीं चाहता ।"

निर्मल—तूने भी अच्छी सोची अरे ऐसे समय में मनुष्य क्या नहीं कर गुजरता है । कौन जाने तेरी दीन वाणी ही रूपनगर और उदयपुर में मेल पैदा करदे ।

चंचल ने शिर उठाकर निर्मल की ओर देखा वह समझ गई कि निर्मल का क्या मतलब है । उसके चेहरे में एक प्रकार की तिलमिलाहट पैदा हो गई परन्तु उसने उसकी बात का कुछ उत्तर न दिया । वह कहने लगी जाओ कलम दावात लाओ और अनन्त मिश्र को भी बुलाती लाओ ।

निर्मल कलम दावात लाई । अनन्त मिश्र भी आ गये । चंचल ने एक खत लिखा और अनन्त मिश्र के हाथ में मोतियों का हार और खत देकर समझा दिया कि जिस समय महाराज यह खत पढ़ने लगें तुम हार को उनके गले में डाल देना और कहना एक राजकन्या ने आप से सहायता की भिक्षा माँगी है । राजकन्या का धर्म डूबने चाहता है, तुम्हारे अतिरिक्त कोई क्षत्री दिखाई नहीं देता जो उसका धर्म बचावे । इसलिये यदि तुम उचित जानो तो उसको अपनी शरण में ले लो ।

अनन्त मिश्र उसी समय उदयपुर की ओर चल पड़े राह में उनको चार वणिक मिले । वह उनसे पूछने लगा—"उदयपुर यहाँ से कितनी दूर है ।" ये वणिक न थे किन्तु डाकू थे और उन्होंने वणिक व्यापारियों का भेप बना रक्खा था, उनका निवास स्थान निकट ही पहाड़ पर था । उन्होंने उत्तर दिया—"उदयपुर यहाँ से थोड़ी दूर है, चलो हम भी तुम्हारे संग चलेंगे।"

पाँचो आदमी संग २ चले और दश ही पाँच पग बढ़े होंगे कि उन डाकुओं ने अनन्त मिश्र को पकड़ लिया और वृक्ष

की जड़ से बाँध कर उसका माल मता सब छीन लिया। परन्तु जिस समय वे अनन्त मिश्र को लूट रहे थे एक सवार घोड़े को दौड़ाता आ निकला। डाकू डर गये और झटपट एक खाई में छिप रहे। अनन्त मिश्र को देखकर सवार को दया आई उसने पूछा—"क्या बात है?" उसने रो-रोकर अपना सब वृत्तान्त सुनाया और जिधर लुटेरे गये थे उधर की राह बता दी। ज्यादा पूछ ताछ का समय न था। सवार जल्दी से खाई की ओर चला परन्तु वह बन्द थी। सवार ने उसको हाथ से तोड़ डाला और आन की आन में एक लुटेरे का शिर धड़ से अलग जा पड़ा। राजकुमारी का खत, मोतियों का हार और बहुत सी अशरफियाँ उसके पास थीं। सवार ने सब ले ली और फिर दूसरे और तीसरे का यही हाल हुआ। फिर सवार ने चौथे के यथार्थ तलवार उठाई। उसने दीनता से कहा—"महाराजाधिराज! मैं आपकी शरण आता हूँ, मुझे जीवन प्रदान कीजिये।" सवार ने उसी समय तलवार खैंच ली। लुटेरा बोला—"महाराज! मैं आपका दास हूँ, मैं आपकी सौगन्द खाता हूं, आज से कभी भी ऐसा न करूंगा। और जीवन पर्यन्त आपका दास बना रहूंगा और इस जीवन दान के प्रतिकार में सदा आपकी सेवा करता रहूंगा।" सवार ने पूछा—"तू कौन है?" उत्तर दिया—"मैं जाति का क्षत्री हूं, आज पर्यन्त लुटेरों का सरदार था, आज से महाराज का सेवक हूं, मेरा नाम मानकलाल है।" सवार ने पूछा—"तूने मुझको कैसे जाना?" मानकलाल बोला—"पृथिवी पर कोई ऐसा भी पुरुष है जो राजसिंह का रूप देखकर न पहिचान ले। सिंह की सूरत स्वयं ही

बता देती है।" राजसिंह ने कहा—"जा तुझे जीवन प्रदान किया परन्तु तूने एक दुःखी ब्राह्मण को लूटा है इस कारण थोड़ा दण्ड अवश्य देना चाहिये, अन्यथा राजधर्म के विरुद्ध होगा।" मानकलाल बड़ी आधीनता से कहने लगा—"महाराज, ऐसा दण्ड दीजिये जिससे यह शरीर आपकी सेवा कर सके। मैं स्वयं ही दण्ड को प्राप्त हो गया। राजपूत की जिव्हा से दीन वाणी निकलना ही बड़ा भारी दण्ड है।" राजसिंह ने मानकलाल को अच्छे प्रकार देखा और फिर कमर से छुरी निकालकर उसके बाँयें हाथ की एक उंगल काट दी। मानकलाल को जरा भी कष्ट न हुआ राजसिंह आश्चर्ययुक्त होकर कहने लगा—"राजपूत! मैंने मुझको दण्ड दे दिया। जा आज से तू उदयपुर की प्रजा में गिनी जायगा।" वह राजा के पैरों को छूकर वहीं खड़ा हो गया।

राना खत और मोतियों का हार लेकर नदी के तीर आया और एक चट्टान पर बैठकर खत को देखने लगा। खत उसी के नाम था। उसने बड़े ध्यान से उसको पढ़ना आरम्भ किया और हम भी यहाँ पर उसका शब्दानुवाद लिखे देते हैं।

खत

राजन्! आप राजपूत कुल दीपक हैं। आप हिन्दुओं के मस्तक के मुकुट हैं आपको हिन्दुओं का सूर्य कहा जाता है और आप इस पदवी के योग्य भी हैं। मैं एक दुखिया कन्या और असहाय अबला हूँ। राजपूताने के मध्यप्रदेश में रूपनगर स्थान है। मैं राजा विक्रम की पुत्री हूं।

रूपनगर का राज्य बहुत छोटा: है, हमारी इतनी सियत नहीं है परन्तु मैं भी तो राजपूतनी हूं और राज-

पूताने की कन्या कहलाती हूँ और इसी कारण आप की दयापात्र हूँ। हे राजपूत-कुल-तिलक ! मेरी बदनसीबी से देहली के बादशाह ने मेरे संग विवाह करने को कहा है। यदि किसी ने रक्षा न की तो देहली के महल में मुझ को दाखिल कर दिया जायगा। शाही सेना मुझे लेने को आ गई है। मुझे बड़ा दुःख है। राजपूत कुल की अभिमाननी क्षत्राणी को मुसलमानी धर्म से नफरत है भला। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि राजहंसिनी बगुले के संग रहे। राजपूतनी का विवाह तुर्क के संग करना बड़ी भारी भूल है। मैं बिलकुल तैयार बैठी हूँ। विष सदा अँगूठी में रहेगा। छोटे राज्य की कन्या के अभिमान को लोग भला तो कहेंगे ही नहीं। छोटे मुंह बड़ी बात। परन्तु कुछ ही क्यों न हो मैंने तो अपने चित्त में कुछ और ही ठान ली है। जोधपुर अम्बर आदि के बड़े २ राजे अपने हिन्दूपन से गिर गये। इन सब के माथे कलंक का टीका लग गया। इनकी कन्यायें तुर्कों के महल में दे दी गईं। केवल आप ही हिन्दू जाति, हिन्दू धर्म और हिन्दूपन के चमकते हुए सूर्य हो। मैं कल शाम को यहाँ से जाऊँगी और आपकी बाट देखती रहूंगी। यदि आप ठीक समय पर आ गये तो खैर नहीं तो जो कुछ बदा है सो होगा। मैं अन्त समय तक देहली पहुँचते २ आपकी बाट देखूंगी, क्योंकि आप सा हिन्दू राजा किसी हिन्दू कन्या की पुकार सुनकर कभी भी भूल ना करेगा, यह मुझ को पूरा विश्वास है। आप प्रताप जी के वंशधर हो, जिन्होंने जंगल में भूखे रह कर जीवन बिताया, और जिसने पुत्रों को वृक्षों की डालियों में पालन पोषण किया, परंतु धर्म को कभी भी हाथ से न जाने दिया।

सहस्रों उपाय करती है । आप द्रौपदी का वृत्तान्त जानते हैं, रुक्मिणी का हाल भी आपने पढ़ा होगा, भीष्म का चरित्र देखा होगा । मैं अपने को आपकी शरण में डालती हूं । मेरी बाँह गहो, मेरी लाज रक्खो । मोती का हार जो भेंट है उसको लीजिये । मैंने अनन्त मिश्र अपने कुल पुरोहित को समझा दिया है कि जब आप यह खत पढ़ते होंगे वह उसको श्रीमान् के गले में डाल देंगे । इसके अतिरिक्त और क्या लिखूं । यहाँ तैयारियाँ हो रही हैं । मैं मृत्यु जीवन दोनों के मध्य में पड़ी हूं । मृत्यु तो मेरे वश है और जीवन आप के हाथ है । मुझे पूरी आशा है कि आप मुझको अवश्य जीवन दान देंगे।"।

राना ने खत को पढ़ा और चिन्ता में डूब गये कि क्या करना उचित है, वह बड़े चतुर और वीर पुरुष थे । उनको भली भाँति ज्ञात था कि राजपूतनी की सहायता करने में उदयपुर पर क्या २ विपत्तियाँ पड़ेंगी ! परन्तु उन्होंने उसी समय चित्त में विचार लिया कि इस खत के संग किस प्रकार का बर्ताव करना चाहिये और तुरन्त ही शिर उठाकर उन्होंने मानकलाल से कहा—"इस समय तुम अपने घर को जाओ, घर का कामकाज कर उदयपुर में आ जाना । इस खत को तो तुमने सुन ही लिया है परन्तु इतना ध्यान रखना कि किसी को कानों कान इसकी खबर न हो ।" यह कह कर राना ने कुछ रुपये उठाकर मानकलाल को दिये ।

अनन्त मिश्र बड़ी चिन्ता में था कि क्या करने आया और क्या हो गया । जब वह इसी चिन्ता में था कुछ आदमी और आते दिखाई दिये वह डरा कि कहीं यह भी लुटेरे ही न हों और मुझे जान से मार दें ! परन्तु यह लुटेरे न थे राजा

"क्या कहूं कैसा विपरीत समय आगया है।" चंचल मुस्करा कर कहने लगी—"विधाता के लेख को कौन मिटा सकता है, प्रिय बहिन! तू कुछ चिन्ता मत कर।"

निर्मल—"मेरे करने धरने से होता ही क्या है? मैं भी तेरे संग दिल्ली चलती परन्तु मैं जानती हूँ कि तुम्हारे जीवन के दिन अब थोड़े ही है और तुम राह में प्राण त्याग करोगी।"

चंचल—"ना बहिन! मैं ऐसा कभी न करूंगी और अन्त समय तक राजा की बाट देखूंगी। मैं कायर नहीं हूं। कौन जाने कहाँ कब और किस रूप में परमात्मा मुझे सहायता दे। तू अपनी बहिन को ऐसी अनजान न जान, मैं अन्त समय तक धीर रक्खूंगी।"

निर्मल—"ईश्वर तेरी सहायता करे।"

चंचल—"बस उसी की तो आस है।"

तैयारी हो गई अन्तिम समय आ पहुँचा। निर्मल आदि सहेलियां चंचल को राजमन्दिर में दर्शन कराने ले गईं और सब वहाँ सच्चे दिल से प्रार्थना करने लगीं। चंचल ने कहा—"प्रभो! जहाँ कोई सहायक नहीं होता वहाँ तुम अपने भक्त के हेतु खड़े रहते हो। कोई स्थान ऐसा नही जहाँ तुम्हारी रक्षा का हाथ न पहुंचता हो। दाता, अब तुमको छोड़ अन्य किसी का सहारा नहीं। अनन्त मिश्र का पता नहीं। प्रभो! अबला की लाज तुम्हारे ही हाथ में है।" चंचल की आँख से अभी तक एक आँसू भी नहीं निकला था परन्तु अब मन्दिर में वह दिल खोलकर रोई और [illegible] [illegible]टकर माता पिता से विदा हुई [illegible] कुहर [illegible] और

सब कहते थे—"अब आज से चंचल देखने को भी न मिलेगी। लोग तरसेंगे परन्तु देख न सकेंगे।"

पालकी महिल के सामने आई। रोती हुई चंचल उसमें बैठाली गई। इर्द गिर्द मुसलमानों की सेना थी। एक हजार मुगल आगे और एक हजार मुगल पीछे थे। पालकी के आस पास सहेलियाँ, रथ और दस बीस हिन्दू नौकर संग थे। इस प्रकार शाही फौज ने वहाँ से प्रस्थान किया। वह सब के सब बहुत ही प्रसन्न थे। जब रूपनगर से कई मील निकल आये, तब चंचल के कान में किसी के गाने का शब्द सुनाई दिया। गाने वाला इस प्रकार गान कर रहा था:—

गीत—"तेरी गति लखि ना परी।
सो मेरे प्रभू, तेरी गति लखि ना परी॥ (टेक)
ऋषि मुनि योगी थक २ हारे अरु श्रम बहुत करी।
भेद अपार पार नहिं पावें बुधि मति सकल हरी॥ सो मेरे०॥
दीनानाथ दीन के स्वामी दीन दयाल हरी।
भक्तन की प्रभू आन संभारी जब २ विपति परी॥

॥ सो मेरे प्रभु० ॥

चंचल के कान खड़े हुए। उसने मन ही मन में विचारा परमात्मा ने सहाय के कारण उत्पन्न कर दिये। उसकी आँखों से प्रेम के आँसू गिरने लगे और उसने मन ही मन में ईश्वर को धन्यवाद दिया और कहा—"दाता, तू कभी अपने पुत्र वा पुत्रियों को नहीं भूलता।" यह गीत गाने वाला मानकलाल था जो भेष बदले पालकी के संग आया था। चंचल ने

पालकी का परदा खोलकर गानेवाले की ओर देखा, वह भी समझ गया कि चंचल गीत का आशय समझ गई।

रूपनगर से देहली को केवल एक ही राह थी और वह भी उसी पहाड़ी में होकर थी जहां राना राजसिंह शत्रुओं की वाट देख रहा था। राह बहुत ही कम चौड़ी थी। ज्योंही कि मुगली सेना पहाड़ों के नीचे पहुँची कि पत्थरों की वर्षा होने लगी। सैकड़ों कुचल कर मर गये परन्तु पत्थरों की वर्षा करने वालों का कहीं पता न लगा। आक्रमण अभी सेना के प्रथम भाग ही पर किया गया था जहाँ राजकुमारी की पालकी थी वहाँ तक अभी एक पत्थर भी न पहुँचा था। मुगल घबराये। यह प्रतीत होता था कि मानों आकाश ही पत्थर वर्षा रहा था। बड़ा हुल्लड़ मच गया। एक २ को अपनी २ जान के लेने के देने पड़ गये। इतने में मुगलों ने पीछे लौटने का विचार किया क्योंकि आगे राह बन्द मालूम हुई परन्तु लौट कर जाना भी तो बड़ा कठिन काम था। ज्योंही मानकलाल ने देखा कि बना बनाया खेल बिगड़ा जाता है, उसने पालकी तो एक ऐसे स्थान पर रखवा दी जहाँ किसी प्रकार का भय न था और आप रूपनगर की ओर चल दिया।

चंचल संतोष से पालकी में बैठी रही, परन्तु मुगल बड़े घबराये हुये थे। आगे बढ़ नहीं सकते थे, पीछे लौटना भी बड़ा कठिन था। राजसिंह के पचास आदमी अपना काम समयानुसार ठीक २ कर रहे थे और शत्रुओं के हृदय को कम्पायमान कर रहे थे।

इस मुगल सेना का सेनापति मुबारक नाम का बड़ा ९ मनुष्य था, उसने बहुत विचारा परन्तु कोई बात समझ

में न आई। अन्त को उसे इससे शंका उत्पन्न हुई कि अभी तक पालकी पर एक पत्थर भी न आया था और भय भी हुआ कि कहीं किसी राजपूत ने तो चंचल के ले जाने का साहस नहीं किया। यह सोच वह अपने घोड़े पर से उतर पड़ा और उसने किसी दूसरी राह से जाने का विचार किया। अभी मुश्किल से उसने अपने विचार की सूचना लोगों को दी होगी कि राजसिंह के आदमियों ने उस पर पत्थर बरसाने आरम्भ किये और बहुत से मुगल मारे गये।

मुबारक जान गया कि शत्रुओं की सेना बहुत थोड़ी है और यदि वह डटा रहा तो शत्रु फिर शाही सेना से मुकाबिला न कर सकेंगे। उसने अपनी सेना को आज्ञा दी कि जिधर से पत्थर आते हैं उधर ही को बंदूकें चलाओ। मुबारक के संग जो बन्दूकची आया था उसका नाम हसन-अली था। उसने ऐसी गोली चलाई कि जिससे कई राजपूत मारे गये और बाकी छिप रहे परन्तु डर गये क्योंकि उनके पास बन्दूकें न थीं।

राजसिंह ने सीटी बजाई। राजपूत मुड़कर उस ओर एक स्थान पर इकट्ठे हो गये कि जहाँ से मुसलमान उनको देख न सकें और पीछे की ओर से लौटकर शत्रुओं पर चढ़ाई करने का उपाय सोचने लगे। राजसिंह को अपनी सफलता की आशा न रही थी क्योंकि अब उसके पास पचास से भी कम आदमी थे, वे विचार ही रहे थे कि किस तरह काम करना चाहिये कि सामने से एक बड़ी सुन्दर कामिनी स्त्री आती दिखाई दी जो कि बिलकुल मणियों से

ही लड़ी थी। उसे देख राजपूतों को बड़ा आश्चर्य हुआ और खुशी के मारे उछल पड़े। यह स्त्री चंचलकुमारी थी जिसने बन्दूकों का शब्द और राना की सीटी को सुनकर पालकी में बैठा रहना उचित न समझा। वह पालकी में से बिना किसी भय के राना के पास चली आई। उसको देख कर राना ने पूछा—"आप कौन हो?"

चंचल—"महाराज! मैं एक तुच्छ स्त्री हूँ। आप को प्रणाम करने आई हूं और आप से एक भिक्षा माँगती हूँ।"

राजसिंह—"वह क्या है?"

चंचल—"मैं कुछ ऐसी राह में पड़ गई हूं कि जिसको भली और कुलीन स्त्रियाँ अच्छा नहीं कहतीं। लज्जा स्त्री की शोभा है इसलिये आप मेरे अपराध को क्षमा कर दीजिये।"

राजसिंह—"वह क्या बात है? क्षमा कैसी? आपत्ति काल में तुमने स्मरण किया। मैं राजपूत था। तुम्हारी सेवा के लिये आ गया।" चंचल ने राजसिंह की परीक्षा के लिये फिर हाथ जोड़ कर कहा—"महाराज, मैं चंचल हूं। मेरी बुद्धी चंचल है और मेरा नाम भी चंचल। उस समय मैंने आप को बिना सोचे विचारे बुला भेजा परन्तु अब मैं दिल्ली जाना चाहती हूं।" राजसिंह को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह कहने लगा—"मुझे तुम्हारे रोकने का कोई भी अधिकार नहीं है, जहाँ इच्छा हो जाओ। परन्तु यह समय ही और है यदि इस समय मैं तुमको जाने दूं तो मुसलमान लोग समझेंगे कि राना डर गया। राना का वंश किसी से

भी डरता नहीं हैं जब तक लड़ाई खत्म नहीं होगी तब तक तुम यहाँ रहो। थोड़ी देर में लड़ाई के अन्त पर तुम जहाँ चाहो जा सकती हो।"

चंचल—"महाराज ? क्या आप एक अनसमझ अबला की भूल को क्षमा न करेंगे ?"

राजसिंह—"एक क्या बीस, परन्तु यहाँ तो कुल को बट्टा लगता है। तुम संतोष करो अभी निश्चय हुआ जाता है। योधाओ! चलो तैयार हो जाओ।"

चंचल एक चमकती हुई अँगूठी दिखाकर और हँसकर बोली—"इसमें प्राणवेधक विष है यदि तुम मुझे रुकावट डालते हो तो मैं अभी स्वप्राण वेध किये लेती हूँ।"

राजसिंह ठट्ठा मार कर हँसकर बोले—मैंने बहुत भी राजपूतनियाँ देखीं परन्तु तुम सब से ही अद्भुत दिखाई देती हो। तुमको यह भी नहीं ज्ञान है कि असल क्षत्री मारने मरने के समय पर स्त्रियों तक का ध्यान नहीं करते। जब शत्रु सन्मुख हो तो धर्म शास्त्र यह आज्ञा देता है कि माता, पिता, स्त्री, गौ, ब्राह्मणादि कुछ ही क्यों न हों किन्तु किसी का भी ध्यान मत करो। क्या मजाल! जो तुम इस समय हमारे सन्मुख से जा सको। इस समय तो तुम हमारी कैद में हो। हम थोड़े से आदमी हैं यदि विधि पूर्वक लड़ते तो शत्रु को मार गिराते अब हम खुल्लम खुल्ला लड़कर जान देंगे। हमारे मरण पश्चात् तुम चली जाना और यदि हमारी जय हुई तब भी हम तुम को न रोकेंगे।"

राजसिंह की बात सुनकर चंचल का चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ और वह कहने लगी—'वीर चूड़ामणि! तुम्हें

धन्य है, तुम से हिन्दूपन की लाज है, तुम धर्म को समझते हो, मैं तो तुम्हारी दासी हूं । राजपूतानी आप जैसा सिंह छोड़कर औरंगजेब जैसे गीदड़ के सत्संग को कब पसंद करेगी बादशाह ने मुझको बेगम बनाने के लिये बुला भेजा था परन्तु मैं तो तुम्हारी बांदी हो चुकी । आज्ञा करो तो मैं उस सेना को भी देख आऊँ जो मुझे लेने आई है ।"

यह कह कर चंचल वहाँ से चल दी । सब अचम्भित रह गये परन्तु कोई भी उसे रोक न सका । वह वहाँ से चलकर उस जगह आई । हसनअली बन्दूकों और तोपों में गोला बारूद भर रहा था और राजपूतों के मृत्युलोक भेजने को उद्यत हो रहा था कि सब उस सुन्दर वदनी कामिनी को देखकर अति आश्चर्ययुक्त हुये और कहने लगे—"यह कौन कमलनयनी सुन्दरी है जो इस प्रकार बे भय तोपों के सन्मुख आकर खड़ी हो गई ?" चंचल ने पूछा—"तुम्हारा सैनिक कौन है ।" यह सुनकर मुबारक उसके सामने आया और कहने लगा—"क्या आज्ञा है । सेवक हाजिर है आप कौन हो

चंचल ने कहा—"मैं एक तुच्छ स्त्री हूं । आप की सेवा में कुछ निवेदन करने आई हूं किन्तु तनिक मेरे सन्मुख आ जाओ तो कहूं ।"

मुबारक राजकुमारी के सन्मुख आ खड़ा हुआ । चंचल ने कहा—"मैं रूपनगर की राज कन्या हूं ये सेना मुझे लेने को आई है । क्या आप मेरी एक इच्छा पूरी कर देंगे ।"

मुबारक—"यदि आपकी इच्छा बादशाह की आज्ञा के अनुकूल होगी तो मैं उसके पूरी करने में कुछ भी कमी न करूंगा ।"

चंचल—"सुनो, मैं नहीं चाहती कि मुसलमान के हाथ विवाही जाऊँ चाहे वह बादशाह हो चाहे वह तुच्छ आदमी हो। क्योंकि ऐसा करना हमारे हिन्दू धर्म के बिलकुल विरुद्ध है। मेरा पिता एक छोटा सा राजा है और सो भी अत्यन्त दुर्बल, इस कारण उसने भयभीत होकर मुझे आपको सौंप दिया। परन्तु मैंने राजसिंह को बुलाया था सो ये भी मेरे दुर्भाग्यवश केवल पचास आदमी लाये हैं; तुम समझ सकते हो कि ये कितने बलवान हैं?"

मुबारक—"अजी आप क्या कहती हैं, पचास आदमी और इतने मुगल मारे जाय, ऐसा बिलकुल असम्भव है।"

चंचल—"क्या आपको हल्दीघाटी का युद्ध स्मरण नहीं। राजपूत बड़े लड़ाके होते हैं, वे शत्रुओं की सेना को लेशमात्र भी नहीं गिनते। परन्तु मैं नहीं चाहती कि वह पचास अमूल्य जीव भी मारे जावें। तुम्हारा अर्थ केवल मुझे ले चलना है सो चलो मैं देहली चलती हूं परन्तु अब राजसिंह पर तोप मत चलाना।"

मुबारक—"मैं समझ गया तुम्हें राजपूतों पर दया आगई। तुम अब प्रसन्नता पूर्वक हमारे साथ चलोगी और लहू बहाना नहीं चाहतीं। मैं इन सब बातों पर राजी हूं परन्तु राजपूत क्या कहते हैं?"

चंचल—"राजपूत भला कब मरने मारने से डरने वाले हैं, परन्तु आप मुझ पर कृपा करके युद्ध न करें और मेल करलें।"

मुबारक—"परन्तु लुटेरों को कुछ दण्ड तो अवश्य देना चाहिये?"

चंचल—"मालूम हो गया तुम मेरी बात न मानोगे।"

मुबारक—"(घबराकर) नहीं नहीं, जब आप चलने पर राजी हो तो में सब भाँति आपको प्रसन्न करने के लिये उन्हें न छेड़ूंगा।"

चंचल—"हाँ हाँ चलती तो हूं परन्तु जिस नियत से बुलाई गई हूँ वह एक दम असम्भव है। मैं बेगम बनना कभी भी नहीं चाहती।"

मुबारक—यह आप क्या कहती हो, मुझ सा चतुर आपके इस धोके में नहीं फँस सकता।" और तुरन्त ही उसने उसे कैद करना चाहा। चंचल इस प्रकार देखकर बोली—"मेरे हाथ में प्राणघातक विष है।"

मुबारक—मेरी क्या मजाल है जो आप से जबरदस्ती कर सकूं परन्तु केवल बादशाह की आज्ञा पूर्ति का ध्यान है।"

इधर यह बातें हो रही थीं उधर राजसिंह युद्ध पर उद्यत था। उसने अपने सिपाहियों का स्थान बदल दिया क्योंकि तोप या बन्दूक के सन्मुख होना बड़ा कठिन था।

जब चंचल मुबारक से बातचीत कर रही थी तो राजसिंह की ओर भी देखती जाती थी। जब उसने देखा कि राजसिंह ने स्थान बदल दिया तो वह भी वहाँ से हट गई और राना के पास आकर कहने लगी—"लड़ाई से बचना असम्भव है, आप दया करके अपनी तलवार मुझे दे दीजिये, मैं आपकी दासी हूँ और यदि हो सका तो आपके संग प्राण त्याग करूंगी।" राजसिंह ने हंसकर कहा—"तू वीरांगना देवी है, ले यह तलवार मैं तेरी सुपुर्द करता हूं, परन्तु इस समय लड़ाई में तेरा काम नहीं। लोग कहेंगे राजा ने स्त्री की सहायता ली।"

चंचल—"आप स्त्रियों को क्या समझते हैं? आपको ऐसा कहना उचित न था।"

मुबारक अभी विचार ही कर रहा था कि इतने में पीछे से तोप चलीं और बहुत से मुसलमान परलोक सिधारे। क्योंकि वह अभी युद्ध करने को तैयार नहीं थे। बस अब तो उनके पाँव न रुक सके और जो कुछ थोड़े बहुत बचे थे सो भी भाग निकले और तब राजसिंह ने उनपर चोट की आवश्यकता न समझी।

सब के सब अचम्भित थे कि ये कौन थे, क्योंकि, मुसलमान जानते थे कि यह ५० आदमी क्या कर सकेंगे और उधर से राना भी मरने को तैयार था। परन्तु ठीक समय पर इस प्रकार सहायता मिलना बड़ी आश्चर्य की बात थी, क्योंकि उसका किसी को ध्यान भी न था। बात यह हुई मानकलाल ने जब देखा कि राजसिंह के पास आदमी कम हैं और मुसलमानों की सेना बहुत बलवान् है तो ज्योंही कि राजपूतों ने मुसलमानों पर हमला किया वह जल्दी में रूपनगर जा पहुंचा और वहाँ से बड़ी चतुराई से राजा की सेना को ले आया और मुसलमानों से लड़कर इस भाँति जय प्राप्त की और राना के आदमियों को भी यमराज के पांव के नीचे से निकाला।

अब मुसलमानों को पराजित करके और राजकुमार वीरांगना देवी चंचल बाई को संग लेकर राजसिंह उदयपुर आया।

जब मुसलमान लोग पराजित हो गये तो मानकलाल राना के पास आया और उनके पाँव चूमे। राना ने पूछा—"तुम अब तक कहाँ थे?" उसने उत्तर दिया—"मैं महाराज की

सेवा में लगा हुआ था, जब मैंने शाही सेना देखी तुरन्त ही चित्त में भय उत्पन्न हुआ कि केवल पचास आदमी किस प्रकार इतनी बड़ी सेना से युद्ध कर सकेंगे और समय देख कर मैंने रूपनगर से सहायता लेने का विचार किया और ईश्वर को कोटानुकोट धन्यवाद है कि मुझको यथा समय सहायता मिल गई और आपने उसका परिणाम तो देख ही लिया। मानकलाल को राना ने धन्यवाद दिया और उस समय से वह उसका बड़ा सिर चढ़ा सरदार बन गया।

चंचल ने राना के महल में प्रवेश किया और जब किसी प्रकार का भय न रहा तो राना ने उसको बुला भेजा। वह लाज से गर्दन नीची किये आई और राना के सामने खड़ी हो गई। राना ने कहा—"राजकुमारी मैंने तुम्हारी आज्ञा पूर्ण कर दी और तुम मुसलमानों से बच गई अब जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो सो कहो। अब तुम रूपनगर जाना चाहती हो वा कहाँ। जहाँ रहना चाहो सो कहो।"

चंचल—"महाराज! आप मुझे हर लाये हो। क्षत्रियों में प्राय ऐसा होता ही है, यद्यपि यह अच्छा नहीं समझा जाता।"

राना—मैंने तुमको हरा तो नहीं, किन्तु क्षात्रधर्म की रक्षा और राजकुल के मान के विचार से मैंने तुम्हारी सहायता अवश्य की थी।" राना की बातों ने चंचल के हृदय में और दृढ़ स्थान बना लिया। राजकुमारी अत्यन्त सुन्दर थी और देश २ के भूप उससे विवाह करने की इच्छा रखते थे परन्तु वह तो राजसिंह को चाहती थी और जिस समय उसने अनन्त मिश्र के हाथ सहायता को बुलवा भेजा था और संग में मोतियों का हार भी भेजा था उससे विवाह की

का परिचय था, परन्तु वीर राना ने चंचल की स्वतन्त्रता छीनना उचित न समझा और भली भांति उसे समझा दिया कि असली राजपूत कभी भी काम-वश नहीं होते, किन्तु काम उनके पग चूमता है। चंचल के दिल में ज्योंही इन बातों ने जगह की वह बड़ी शंका ग्रस्त हो गई। बेचारी क्या कहती, स्त्रियां मरदों की तरह साफ २ बात चीत करना उचित नहीं समझतीं। वह वैसे ही सिर नीचे किये खड़ी रही और कहने लगी—"महाराज ? मैं मूढ़ कन्या राजधर्म व कुलधर्म क्या जानूं यदि आपको इसी तरह बातचीत करनी थी तो आपने मुझको दिल्ली जाने से क्यों रोका। यद्यपि मैंने आपसे उस समय बहुत प्रार्थना की थी"

राना—"मुझको उदयपुर के नाम का ख्याल था, मैंने तुमको वचन दे दिया था कि युद्ध समाप्त होने पर कोई भी तुम को न रोकेगा जहाँ चाहो वहां जाना, इसलिये मैं ऐसी बात-चीत करता हूं।"

चंचल—"महाराज आप धन्य हैं! वचन पूरा करना सूर्य-वंशी क्षत्रियों का परम धर्म है।"

राना—"राजकुमारी जी! उदयपुर वालों ने बड़ी २ कठिनाइयों का सामना करके यह उपदेश सीखा है कि किसी की स्वतन्त्रता को हानि पहुँचाना अधर्म है। जिस समय तुमने अपना पत्र और हार भेजा था वह आपत्ति का समय था। आपत्ति के समय बुद्धि शुद्धि सब एक ओर जा बैठती है। मनुष्य उस समय ऐसे २ काम कर बैठता है जिसके लिये पीछे पछताना पड़ता है। भीष्म पितामह किसी राजकुमारी को विचित्रवीर्य के लिये हर लाये थे उसका परिणाम दोनों

के लिये बुरा ही हुआ। इसलिये मैं तुमको पूरा २ अधिक
देता हूं कि जैसा उचित जानो वैसा करो।"

चंचल—"महाराज, मैं तो आप ही की शरण में आई हूं।

राना—"राजकुमारी जी ! आप ने मेरे कुल को ब
मान प्रदान किया, मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं और तुम उदयपुर
रह कर क्षात्रधर्म पालन कर सकोगी। परन्तु एक और बा
है, जब तक हमारे माता पिता प्रसन्नता पूर्वक मेरी मा
बड़ाई न करें सम्भव है कि पीछे तुम को भी शोक हो। इ
लिये उचित जानो तो रूपनगर जाकर अपने माता पिता
मिल आओ।

चंचल—"महाराज ! जिस पिता ने मुझे औरंगजेब के पा
भेजना चाहा था, क्या आप फिर मुझको उसके देखने व
आज्ञा देते हैं ?"

राना ने चंचल को देखा और महारानी कहकर एक कुरस
पर अपने पास बिठा लिया। फिर उनका विवाह संस्का
रचाया गया और इस प्रकार दोनों वहाँ रहने लगे। रानी
सब से पहले सेना के तैयार होने का हुक्म दिया और अपन
सखी निर्मल कुमारी को रूपनगर से बुलाकर मानकलाल
विवाह दिया।

औरंगजेब ने सुना कि चंचल उदयपुर चली गई। व
क्रोधाग्नि में जल भुनकर भस्म ही तो हो गया और तभी
औरंगजेब राजपूतों से बड़ा वैर रखने लगा ! इसने जजिय
लेने के बहाने से गाँव नाश कर दिये और तमाम राजपूतों
एक भी मन्दिर ऐसा न बचा जिसकी मूर्तियों के नाक का
न काटे गये हों। जिन लोगों ने आबू पर्वत वा उसके इ

गिर्द के मन्दिर देखे हैं वे इस को भले प्रकार जानते हैं। आबू पर जैनियों का एक बड़ा मन्दिर है जो ताजमहल के बाद भारतवर्ष में दूसरा गिना जाता है। जैनी लोग बड़े सीधे होते हैं, झगड़ालू नहीं होते, परन्तु क्रोधाग्नि में बादशाह ने इन की मूर्तियों और मन्दिरों को भी दूषित कर दिया। बहुत से ढा दिये गये और बहुतों के स्थान में मसजिदें बनाई गईं और जिनके ढाने में अधिक धन व्यय का भय था उनकी मूर्तियाँ तोड़ डाली गईं। राना राजसिंह ने चंचल की सम्मति से औरंगजेब को बड़ा शिक्षाप्रद पत्र लिखा परन्तु सब व्यर्थ। और उत्तर दिया गया कि इसका दण्ड उदयपुर को अवश्य कभी उठाना पड़ेगा। चंचल भी अचेत न थी वह भले प्रकार जानती थी कि औरंगजेब अवश्य अपनी क्रोधाग्नि को कभी न कभी उगलेगा और इसीलिये वह स्वयं सैनिक कार्यों में भाग लेने लगी और यथा शक्ति उसने राज्य रक्षा में किसी प्रकार की कमी न की।

औरंगजेब बहुत बड़ी सेना लेकर उदयपुर पर चढ़ आया। इतिहास रचयिता लिखता है कि या तो इतनी सेना लेकर कैखुसरो ईरान के बादशाह ने यूनान पर चढ़ाई की थी या अब औरंगजेब उदयपुर के नाश के लिये इतनी सेना लाया है। बेचारा उदयपुर दिल्ली के सामने कौन चीज था। हाथी और मच्छड़ की लड़ाई थी। इतनी सेना इस देश में कभी भी इकट्ठी नहीं हुई थी। वह पूरा विचार करके आया था कि उदयपुर का एक आदमी भी जीता न छोड़ा जाय। जिस औरंगजेब ने पिता को कारागार में बन्द कर रक्खा और उसकी आँखें फोड़ दीं, जिसने अपने सगे भाइयों को मार डाला वह भला किसी हिन्दू अपराधी का जीता रहना कैसे चाह सकता था?

औरंगजेब की सेना चार भागों में विभाजित थी और उसने चारों ओर से उदयपुर को घेर लिया था। राजसिंह भी बड़ा चतुर था। उसने तुरन्त ही संग्रामस्थल को छोड़ दिया और एक पहाड़ पर चढ़ गया जिसकी राह बड़ी कठिन थी और जिस पर वीर राजपूतों के अतिरिक्त कोई भी चढ़ने का साहस न कर सकता था। यहां राना ने भी सेना के तीन भाग किये। एक दुवारी दूसरा वेलगाड़ी और तीसरा नयन पूर्व की ओर रक्खा। राजसिंह में साँगा और प्रताप का रुधिर था, इस समय उसने किसी पर भरोसा नहीं किया और अपने ही पुत्रों को बुलाकर कहा—"बाप्पारावल के पुत्रों! आज जैसी लड़ाई उदयपुर पर की गई है पहले कभी भी नहीं हुई थी। बाबर या अकबर के समय में साँगा और प्रताप दुःखी थे, उस समय मुसलमानों का अधिकार भी देश पर दृढ़ न था इस समय देहली उन्नति के शिखर पर है उदयपुर दुर्बल है। उधर अनगिनत सेना है, इधर केवल गिने २ से आदमी हैं। परन्तु हम को अपने धैर्य और वीरता पर पूर्ण विश्वास है क्योंकि उदयपुर की रक्षा में प्रत्येक अपना दान करने को उद्यत है। दोनों लड़कों ने पिता को प्रणाम किया। राना ने जयसिंह बड़े बेटे को पश्चिम के नाके पर रक्खा और छोटे बेटे भीमसिंह को पूर्व की ओर भेजा और स्वयं नयन के तंग दर्रे में शत्रु की बाट देखने लगा।

औरंगजेब का एक लड़का अकबर दुवारी की ओर पचास सहस्र सेना का नायक था आजमशाह बीच के भाग को देख रहा था, तीसरी जगह उदयपुर सागर तालाब के निकट स्वयं औरंगजेब ही था। शाहजादे अकबर ने पहाड़ी को लेना चाहा परन्तु जयसिंह सिंह की भाँति तड़प कर उस पर

आया और उसे गुजरात की ओर भगा दिया । जब आजम सन्मुख आया तो अन्त को उसे भी भागना पड़ा और मुगलों की कुछ ऐसी हालत हो गई की सबों को भागने की सूझी। इस स्थान पर करोड़ों रुपयों की वस्तुएँ राजपूतों को मिलीं। हाथी घोड़े सभी कुछ उनके हस्तगत हो गये । ये लोग पहाड़ी राहों पर प्राण त्यागने को डटे खड़े थे; सब ने समझ लिया था कि उदयपुर का अन्त समय है और इसलिए सब अपनी जान हथेली पर लिये युद्ध करते थे । राजसिंह ने समय पाकर मध्य सेना पर चढ़ाई करदी और उनको घेर-घेर कर मारा । यहाँ शहजादी जेबुन्निसा और उदयपुरी बेगम भी बादशाह के संग थीं । जिस हाथी पर यह दोनों थीं, राजपूतों ने उसे पकड़ लिया । और तो सब भाग गये परन्तु यह दोनों पकड़ी गईं । इसमें जोधपुरी बेगम भी थी जिसको राना ने नहीं पकड़ा, किन्तु आदर पूर्वक औरंगजेब के पास भिजवा दिया । औरंगजेब ने लौटकर पहाड़ी पर चढ़ने का विचार किया परन्तु जब पत्थरों की वर्षा होने लगी और उधर से गोले आने लगे और सहस्रों मनुष्य मारे गये तो झक मार कर उसे हार माननी पड़ी । वह तो चाहता था कि उदयपुर को सदा के लिए मृत्यु की शैय्या पर सुला दें । परन्तु कुछ करते धरते न बना । स्वयं उसी को राजपूतों ने उदयसागर के निकट घेर लिया और बड़ी कठिनाई से वह अपनी रक्षा कर सका । उसकी दूसरी बेगमें उसकी इस गति को देखकर बड़ी घबड़ायीं और उनकी घबड़ाहट ने औरङ्गजेब पर और भी आपत्ति डाली ।

उदयपुरी बेगम और जेबुन्निसा दोनों कैद में थीं । महारानी चंचलकुमारी ने उदयपुरी को अपने पास बुला भेजा

ार उसके बैठने के लिये एक मसनद तैयार करा दी। चंचल पास आने के पहले उदयपुरी बहुत उदास थी, परन्तु चंचल आदर सत्कार को देख कर उसे अभिमान आ गया और मझी कि चंचल भय के मारे मेरा इतना मान करती है। चल ने इसको अच्छी तरह मान पूर्वक मसनद पर बिठाया। ह कहने लगी—"क्यों तुम्हें मृत्यु ने ऐसा अभिमानी बना या है ? जो हमें इस भाँति निरादर से बुलाया है।" चल उसकी बात को सुनकर हँसी और बोली—'बेगम, तुमको हीं मालूम कि राजपूतों का जीवन मरण अपने हाथ में होता है, ौर इस समय तुम्हारा भी हमारे हाथ में है, परन्तु इस समय म यह कुछ भी नहीं करेंगे। हमने तुम्हें केवल इसलिये बुलाया कि हमारा हुक्का भर दो।" यह सुनकर उदयपुरी सहिम गई और सर से पाँव तक पसीना आगया, परंतु क्रोध से बोली—'बादशाह की बेगमें हुक्का नहीं भरती हैं।"

चंचल बोली—"किसी समय बादशाह की बेगम थीं परंतु इस समय तो हमारी कैदी और दासी हो, इसलिए हुक्का भरने की आज्ञा देती हूँ।

उदयपुरी बेगम ने क्रोध से कहा—"तुम्हारी क्या मजाल! जो बादशाह की बेगम से हुक्का भरवाओ।"

चंचल—ऐसा न कहो किसी समय तुम्हारे बादशाह को भी हमारे राना का हुक्का भरना पड़ेगा, तुम तो कोई चीज ही नहीं।"

चंचल ने फिर एक दासी को इशारा किया। वह उदयपुरी को उठाने लगी परंतु जब वह न उठी तो दासियों ने उसे बल

पूर्वक उठाया और जब चिलम उसके हाथ में दी गई तो वह अचेत हो गिर पड़ी, दासियों ने उसे उठाकर एक सुन्दर पलंग पर लिटा दिया।

इसके बाद महारानी ने जेबुन्निसा को बुलाया, पहले तो वह घबड़ाई क्योंकि वह सुन चुकी थी कि उदयपुरी से कैसा बर्ताव किया गया। परन्तु जब महारानी के पास आई तो उन्होंने बड़े आदर पूर्वक उसकी अगवानी की और एक सुन्दर मसनद पर उसे बैठाया। जेबुन्निसा बड़ी चतुर स्त्री थी, उसने बड़ी सुशीलता पूर्वक बातचीत की। चंचल भी उससे मिल कर बहुत प्रसन्न हुई और अपने हाथ से उसको पान और इत्र दिया। दासी सेवा करती रही और किसी प्रकार की असभ्य बातचीत नहीं हुई और जैसे आदर पूर्वक वह आई थी वैसे ही गई। बाद को जेबुन्निसा और चंचलकुमारी में बड़ी प्रीति हो गई और शाहजादी उसको धन्यवाद देती रही।

दूसरे दिन उदयपुरी फिर चंचल से मिली और उस दिन बहुत कुछ जवाहिरात अपने कैद से छूटने के लिये देने चाहे परन्तु रानी ने कहा—"यदि तुम हमको महारानी मान लो तो अवश्य छोड़ी जा सकती हो।" उदयपुरी बोली—"अरी मूढ़! यह तेरा अपराध कभी भी क्षमा न किया जायगा।" यह कह कर वह उठी और वहां से चलने लगी। चंचल ने हँस कर कहा—"मैं मूढ़ गँवार अवश्य हूं परन्तु आज तो तुमको मूढ़ ही की बाँदी बनना पड़ा है और तुम जाती कहां हो? क्या तुमको नहीं मालूम कि तुम मेरी कैद में हो?" उदयपुरी उस वक्त रोने लगी और उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। परन्तु यह उसकी अपनी मूर्खता थी कि व्यर्थ चंचल को छेड़ २ कर उसकी सुशीलता से लाभ न उठा सकी।

औरंगजेब की दशा भी बहुत बुरी थी। यहाँ तक कि रसद

की न्यूनता के कारण उसके आदमी व्याकुल हो गये और बहुत सा सामान राजपूतों को मिल गया, तब अन्त को उसे सन्धि करनी पड़ी। राना ने अपने सरदारों को बुलाकर सलाह की, दयालशाह मुख्य मन्त्री सन्धि के विरुद्ध था क्योंकि औरंगजेब ने हिन्दुओं को बहुत सता रक्खा था। परन्तु राना राजसिंह जो बड़ा चतुर और नीतिवान् पुरुष था उसने सन्धि करना हीं भला समझा। यद्यपि वह जानता था कि औरंगजेब इस समय केवल व्याकुलता के कारण सन्धि करना चाहता है और उसकी बात का कोई भी एतबार नहीं।

जब सन्धि के नियम मंजूर हो गये तो निर्मल कुमारी ने विचार किया कि उदयपुरी के अभिमान को अवश्य ही नीचा दिखाना चाहिये। उसने उसके कान में झुककर कहा—"बिना हुक्का भरे तुमको जाने की आज्ञा नहीं है। उदयपुरी ताम्रवर्ण आंखें करके बोली—"दुष्ट। तेरी जिव्हा निकलवा लूंगी, मुझे देहली पहुँचने दे फिर तेरा और चंचल का हुक्का देखूंगी।" चंचल ने यह सब सुन लिया वह कहने लगी—"मैंने सुना है राना को बादशाह पर दया आ गई, अब तुमको हमारा कृतकार्य होना चाहिये, कृतघ्नता सब से बड़ा दोष है। तुम तो जब हम सब को देखोगी पहिले हम तो तुम से चिलम भरवा लें। राना ने बादशाह को छोड़ दिया उसके वे मालिक थे किन्तु तुम्हारी मैं हूं। शाहजादी जेबुन्निसा जावे परन्तु तुम जब हुक्का भर लाओगी तब तुम जाने पाओगी।" शाहजादी जेबुन्निसा ने चंचल को बहुत कुछ समझाया परन्तु उसने एक न मानी, उसने कहा—"कुछ बात नहीं, यही इस झगड़े का कारण हैं, इससे कहो कि चिलम भर लावे। जब तक यह ऐसा न करेगी तब तक जाने न दूंगी, आप चाहें जावें या न जावें।"

अन्त को जब उदयपुरी ने देखा कि वह किसी की भी मानने वाली नहीं तो चिलम पर आग रक्खी और चंचल के सामने हुक्का रक्खा। चंचल ने कहा—"देखो ! अब तुमको कभी साहस न होगा कि किसी के लिये मूढ़ आदि शब्दों का प्रयोग करो या हुक्का भरवाने को कहो । शाहजादी जेबुन्निसा की सिफ़ारिश से तुम्हें जाने की आज्ञा है। अब जाकर औरंगजेब से चाहे कुछ कहना । जो लड़की बादशाह की तस्वीर पर लात मारती वा जो बेगम से चिलम भरवाने का साहस करती है वह दुनियां में किसी के बल से भय नहीं खाती ।" बेगम रोने लगी। जेबुन्निसा प्रसन्नता पूर्वक चंचल से मिलकर बिदा हुई, और जब यह दोनों डेरे में पहुंच गईं तब उसी समय से कूच हो गया।

कुछ दिनों पीछे औरंगजेब ने सन्धि को चाक कर दिया और लड़ाई के लिये उद्यत हो गया। राना ने जब सुना उसको बड़ा क्रोध आया। वर्षों की लड़ाई से उसकी सेना बहुत कम हो गई थी, राजस्थान के राजे उसकी सहायता से काँपते थे। तथापि उसे कभी भी भय प्राप्त न हुआ । जब औरंगजेब ऊपर चढ़ आया तो दुर्गादास राठौर अकेला उसका सहायक था। औरंगजेब दुर्गादास के नाम से डरता था, वह कहता था—"शिवाजी मरहठा मेरे सामने कोई चीज नहीं । यदि दुर्गादास मेरे वश में हो जावे तो मुझे सदा के लिये आराम हो जावे ।" राना दुर्गादास ने इस समय भी औरंगजेब को बड़ी हानि पहुंचाई और अन्त को उसे मारपीट कर फिर सन्धि करनी पड़ी।

चंचल के विवाह से रूपनगर और उदयपुर में गाढ़ मित्रता

हो गई। विक्रमसिंह स्वयं राना से आकर मिला और सदा की शत्रुता बिलकुल दूर हो गई।

चंचल बड़ी सच्ची और आज्ञाकारी स्त्री थी। राना की सेवा वह इस प्रकार करती थी मानो उसकी दासी थी। इन दोनों में बड़ा गहरा प्रेम था, दोनों आनन्द मंगल से रहते थे और अन्त को शांति पूर्वक दोनों ने इस असार संसार को छोड़ा।

प्यारे पाठक गण! यह हिन्दूपन का अभिमान सचमुच एक बड़ी अमूल्य वस्तु है। जिसमें सेल्फहेल्प स्वावलम्बन और जातीय अभिमान तथा अपने नाम और मान का ख्याल है, क्या संसार भर में उनको कोई दबा सकता है? हमारी क्या दशा है? न तो हमें नाम ही का ध्यान है और न मान ही का। हम नहीं समझते किस काम के करने से हमारा मान होगा और किसके करने से अपमान।

ईश्वर करे चंचलकुमारी का यह थोड़ा सा वृत्तान्त तुमको अपना मान अपने आप करना सिखाये, तुम में कौमी अभिमान उत्पन्न हो और तुम अपने को मनुष्य समझने लगो। तथास्तु।

सुन्दर बाई

धीर धरो धीरज करो, धीरे सबहि बनाय।
माली सींचे वृक्ष को, ऋतु आये फल खाय॥

सुन्दर बाई शैली नाम एक छोटी सी राजधानी के राजा केसरीसिंह की पुत्री थी। यह संस्कृत में अच्छी योग्यता रखती थीं और न्याय शास्त्र को भले प्रकार समझ सकती

थी। यह बात की बड़ी धनी और साहस की बड़ी पूरी थी। सुन्दरता में तो अद्वितीय ही था।

एक दिन अपनी सहेलियों के संग सुन्दर अपने पिता के बाग में आई। वहाँ वृक्षों को हराभरा देख कर बड़ी प्रसन्न हुई। बाग के मध्य में एक कोठी थी जोकि उस समय के अनुसार अच्छी तरह सजी हुई थी। कुछ देर तक तो यह सब सहेलियाँ उस कोठी में रहीं और फिर बाग में वृक्षों के नीचे बैठ कर गाने लगीं।

जिस समय यह सब इस प्रकार गान कर मंगल मना रही थीं उसी समय वल्लभापुर का राजकुमार वीरसिंह इस बाग में आया और एक वृक्ष की छाया में जीनपोश बिछा कर लेट गया। यह अपने संगियों से बिछुड़ने और धूप के कारण अति व्याकुल होकर इस बाग में आया था। जब इसने सुन्दर गान का शब्द सुना तो इसके चित्त में लालसा उत्पन्न हुई कि स्वयं भी गाने वालों से मिलकर चित्त प्रसन्न करें। इसी आशा से वह धीरे-धीरे दबे पाँव उठकर उस वृक्ष के समीप पहुँचा जहाँ यह लड़कियाँ सुन्दर गान कर रही थीं। जब इसने देखा कि यह लड़कियों का समाज है तो निकट ही एक वृक्ष की ओट में बैठकर गाना सुनने लगा।

थोड़ी देर बाद गाना बन्द हो गया और हँसने का शब्द सुनाई दिया। एक ने कहा—"मैं जिससे बिवाही जाऊँगी उसे खूब ही ठीक करूँगी, ऐसी नाक में बत्ती करूँगी कि मुन्ना जन्म भर न भूलें। पुरुष स्त्री को पांव की जूती समझते हैं और यह मालूम ही नहीं कि यदि स्त्री न हों तो उनका कहीं ठिकाना न लगे।" दूसरी बोली—"यह सत्य है, मैं तो वल्लभी-

पुर के राजपुत्र वीरसिंह से विवाह करूँगी और उन्हें इस भाँति रिझाऊँगी कि वे मेरे ही होकर रहें और यदि उन्होंने मेरा मान न किया तो मैं वल पराक्रम द्वारा उन्हें दिखा दूंगी कि स्त्रियाँ पुरुषों से किसी बात में कम नहीं होतीं ; किन्तु प्रायः उनसे बढ़ चढ़ कर होती हैं। तब तो वे मेरा लोहा मान जाँयगे और लज्जित हो मेरे आज्ञाकारी बने रहेंगे। तीसरी बोली—"अरी राजकुमारी क्या तुम्हारे मारे राजसिंह दूसरा विवाह भी न कर सकेगा।" जब वीरसिंह ने यह शब्द सुने तो वह बड़ा अचम्भित हुआ और कहने लगा—"अरे यह तो केसरीसिंह का बाग है और यह उन्हीं की राजपुत्री बोल रही है।" यह विचार कर कि 'अब यहाँ रहना उचित नहीं।' चलने को उद्यत हो गया। परन्तु चलते-चलते उसने वृक्ष की ओट से सुन्दर को देख लिया। उसका मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा को भी लजाता था और उसके नखसिख से तो मानो यही प्रतीत होता था कि सुन्दरता स्वयं ही रूप धारण कर के आई है।

यह फिर वहाँ न ठहरा और घोड़े पर चढ़ बाग से बाहर निकल आया और निश्चय करने के लिये लोगों से पूछा—'क्या बागमें राजा की बाई आई हैं ?' लोगों ने कहा—'हां-हां वही हैं।' तब उसने विवाह करने का विचार किया और जब घर पहुँचा तो अपने मित्रों द्वारा अपने पिता से केसरीसिंह की राजकन्या के संग विवाह करने की इच्छा प्रकट की। केसरीसिंह बड़ा भला और कुलीन राजपूत था। राजा ने वीरसिंह की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया उसने अपने पुरोहित को भेजकर केसरीसिंह की पत्री से अपने राजकुनार के विवाह की प्रार्थना की

की और थोड़े दिनों पीछे बड़ी धूम से विवाह रचा गया।

सुन्दर बाई और वीरसिंह का विवाह तो हो गया और सुन्दर वीरसिंह के महल में भी आगई परन्तु वीरसिंह तो सुन्दर की परीक्षा करना चाहता था, इसी कारण वह उसके पास न गया।

सुन्दर को अत्यन्त संशय हुआ कि न मालूम प्राणाधार पति दर्शन क्यों नहीं देते ? परन्तु बहुत विचार ने से भी उसको इसका कोई कारण न ज्ञात हुआ। अन्त को बेचारी हार कर शुभ समय की बाट देखने लगी परन्तु उसने अपना शोक किसी पर प्रकट नहीं होने दिया और प्रसन्नतापूर्वक दिन व्यतीत करने लगी।

बहुत समय बीतने पर एक दिन एक सखी ने आकर कहा—"बाईजी, आज वर्ष दिन का त्यौहार है, यदि उचित जानो तो यहां से थोड़ी दूर पर एक मन्दिर में मेला लगता है वहां चलो।" सुन्दर ने कहा—"अच्छा चलो।" बस फिर क्या था बड़ी बड़ी तैयारियां होने लगीं। सायंकाल के समय रानी अपनी सखी सहेलियों को संग ले मन्दिर को चलीं। वहां रानी की पूजा का प्रबन्ध इस प्रकार किया गया था कि जिस समय वह मन्दिर में प्रवेश करे उस समय कोई पुरुष वहां न जाने पावे।

जब वीरसिंह ने सुना कि सुन्दर मन्दिर को जा रही है, तो वह भी अपने सखाओं सहित वहां गया। उसकी यह इच्छा थी कि मन्दिर ही में सुन्दर से मिलें। और किसी मनुष्य को तो उस समय वहां जाने की आज्ञा न थी। पर राजकुमार

वीरसिंह को कौन रोक सकता था। वह बेधड़क मन्दिर में चला गया जहां सुन्दर पूजन कर रही थी। जब वीरसिंह निकट पहुँचा तो उसने सुन्दर को प्रार्थना में यह शब्द कहते सुना—"परमात्मन्! तू मेरे पति को सब प्रकार सुख दान दे।" इतने में वीरसिंह उसके सन्मुख हुआ। सुन्दर ने आहट सुनकर सिर उठाया और दोनों की आँखें चार होगई। उसी समय कुमार ने कहा—"क्यों, अब तक पति को बल पराक्रम से वश में नहीं किया? बाग में जो कहा था सो स्मरण है कि नहीं?"

यह सुनकर सुन्दर को ज्ञात हुआ कि उसके प्राणाधार पति ने उसकी बाग की बातें सुन ली थीं और इसी कारण परीक्षा की इच्छा से वे महल में नहीं आते हैं। उसने हाथ बांधकर कहा—"प्राणनाथ! स्त्रियां मूर्ख होती हैं, आप ज्ञानी और विद्वान् हैं, मेरे अपराध को क्षमा कीजिये।" वीरसिंह बोला—"नहीं, जब तक तुम अपनी बात को सत्य करके न दिखाओगी तब तक मैं तुम्हारे पास नहीं आऊँगा।" यह कहकर वह चला गया पहले तो सुन्दर बिलकुल चिंता-ग्रस्त मौन खड़ी रही पर पीछे से विचार किया कि वीरसिंह ने मन्दिर में ऐसी प्रतिज्ञा की है अब वह किसी और रीति से वश नहीं आवेगा।

वह पूजा करके महल को लौट आई। कई दिन तक तो विचारती रही कि क्या उपाय करूँ जिससे पति को यह भली भांति ज्ञात हो जाय कि मैं किसी प्रकार बल पराक्रम में उनसे कम नहीं हूँ, परन्तु कोई भी विचार ठीक समझ में नहीं आया। अन्त को उसने यही विचारा कि गृह से बाहर रह

कर समय देखूं परमात्मा की दया से कभी न कभी मैं अपना महत्व अवश्य सिद्ध कर दिखाऊँगी।

मन्दिर से लौटने के पाँचवें दिन उसने पिता को पत्र लिखा और केसरीसिंह ने जो अँगूठी विवाह के समय दी थी उसे दासी को देकर कहा—"सखी तुम इसको ले जाकर पिता को देना और कहना कि यह खराब हो गई है इसको खोलकर कर फिर बनवा दें और मेरे पास भेज दें।"

जब केसरीसिंह के पास यह अँगूठी पहुंची उसने समझा कि सुन्दर पर कोई आपत्ति पड़ी है। उसने दासी को तो विदा किया और आपने अलग जाकर अँगूठी के नग को निकाला। उसके भीतर एक पत्र लिखा हुआ निकला। राजा ने उसको पढ़ा। उसमें यह लिखा था—

"श्रीमान् पिताजी! यदि मैना तोता बोलते न होते तो वे कभी पिंजड़े में न रक्खे जाते। मैंने एक दिन बाग में सखियों से कहा था कि यदि मेरा विवाह वीरसिंह से हो जावे तो मैं अपना बल और पराक्रम दिखाकर उनको मोहित रक्खूंगी। उस समय राजकुमार बाग में आये हुए थे, उन्होंने मेरा कहना सुन लिया और अब उसकी परीक्षा लेना चाहते हैं। इसके कहने की आवश्यकता नहीं कि मैं दुःखी हूं। आप मेरे लिए एक अच्छा वर्म और एक अत्यन्त तीव्रगति घोड़ा भेज दीजिये। परन्तु इस प्रकार भेजिये कि किसी को कानों कान खबर न हो। तिस पीछे जो कुछ होगा वह सब ईश्वराधीन है।

आपकी प्यारी पर दुखी पुत्री—

सुन्दरबाई।"

पत्र को पढ़कर केसरीसिंह अथाह चिंता-सागर में पड़ गया और विचारने लगा कि घोड़ा और वर्म किस प्रकार से भेजूं । बड़ी देर विचार ,करने के पीछे वल्लभीपुर से सुन्दर बाई के महल तक सुरंग खुदवाना आरम्भ किया यद्यपि इसमें उसका अगणित धन व्यय हुआ परन्तु पुत्री की मान-रक्षा के लिये उसने कुछ भी उसका ध्यान न किया ।

जब सुन्दर के पास घोड़ा और वर्म पहुंचा तो यह अपने पिता के चातुर्य्य पर अत्यन्त प्रसन्न हुई । फिर अपनी दासी को निकट बिठा कर कहने लगी कि—"देखो, तुम जानती हो वीरसिंह का मेरे संग किस प्रकार का वर्ताव है ? बाहर जाकर उनको अपने बल और पराक्रम का परिचय दूँगी । परन्तु यह ध्यान रहे कि मेरा यह गुप्त आचरण किसी पर प्रकाशित न हो । यह कह कर उसने मरदाना भेष धारण किया और अश्वारूढ़ हो सुरंग द्वारा बाहर आई ।

दूसरे दिन एक सुन्दर युवा पुरुष वल्लभीपुर की राजसभा में आया और नौकरी की इच्छा प्रगट करने लगा । सब लोग उसकी चाल ढाल देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए । राजा ने आश्चर्ययुक्त हो पूछा—"तेरा नाम क्या है और किसका पुत्र है ?" उसने उत्तर दिया—"मेरा नाम रत्नसिंह है, मैं एक राजपुत्र हूं । परन्तु किसी कारण से घर से चला आया हूं । मैंने पिता व देश के नाम न बताने की कसम खाई है और उसकी आवश्यकता भी नहीं है आप को मेरे काम से प्रतीत होगा कि मैं किस प्रकार का मनुष्य हूं । जो काम किसी वीर से न होसके मैं कर दिखाऊँगा खास कर शत्रु के सन्मुख आप रत्नसिंह को अपने सब अधिकारियों से तीव्र बली और चतुर पावेंगे ।" राजा ने राजपूत के बाँकेपन और वाक्पटुता को पसन्द किया । अतएव सभा में उसको एक पद

दिया गया और कभी २ सभा में आने की आज्ञा दी गई। रत्नसिंह ने सलाम किया।

जिस समय से वीरसिंह ने रत्नसिंह को देखा था उसी समय से उसके चित्त में उसकी सुन्दरता और वाक्पटुता ने स्थान करलिया, क्योंकि इसने अपने को राजपुत्र बतलाया था इसलिये राजा ने भी इसको राजकुमार वीर के संग की आज्ञा देदी। इसके बाद यह दोनों उसी दिन से बड़े सच्चे मित्र बन गये और वीरसिंह ने अपनी कोठी के समीप एक मकान उसके रहने को खाली करा दिया।

रत्नसिंह ऐसा धीर, शांत स्वभाव और फुरतीला राजपूत था कि जब यह दोनों जंगल में शिकार खेलने को जाते थे तो इसकी फुरती और धीरता को देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य होता था। यह रत्नसिंह कोई और नया आदमी नहीं है, यह वही सुन्दर है जो मरदाना भेष धारण करके अपने महल से निकली थी कि वे अपने बल पराक्रम को अपने पति पर प्रकाशित करें। इसने ऐसी अच्छी तरह मरदाना भेष बनाया था कि वीरसिंह को जरा भी न मालूम हुआ कि यह रत्नसिंह है या उनकी स्त्री सुन्दर है। खैर इन दोनों में इतनी प्रीति हो गई कि एक पल भर को जुदा न होते थे। कभी २ इन दोनों में जब स्त्रियों की बात चलती तो वीरसिंह अपनी रानी सुन्दर की कठोरता और कुचित्तता का हाल सुनाता रत्नसिंह हँसकर कहता—"आपने सुन्दर के संग अच्छा बर्ताव नहीं किया।" वीरसिंह कहता—"मैं उससे अति प्रीति करता हूं पर यह देखना चाहता हूँ कि वह कैसे अपने महत्व को प्रकाशित करती है? यदि वह सच्ची राजपूतनी है तो

अपनी बात सत्य कर दिखायेगी। मैं उसका कुछ अशुभचिंतक नहीं।" रत्नसिंह यह सुन ठट्ठा मार कर हँस देता था।

इस प्रकार प्रसन्नता पूर्वक दोनों अपने दिन व्यतीत करने लगे। कुछ काल पीछे एक सिंह ने वल्लभीपुर के निकट अपनी गुफा बना ली और प्रति दिन एक दो आदमियों को भक्षण करने लगा। बड़े २ शूरवीर उसको मारने की ताक में रहते थे परन्तु कोई भी उसको न मार सका। जब प्रजा अति दुःखी हुई तो राजा ने रत्नसिंह को बुला कर कहा—"देखो, हमारी प्रजा अति दुःखी है।"

रत्नसिंह ने कहा—"महाराज! मैं तो हर प्रकार आपकी सेवा करने को उद्यत हूं। परन्तु इस सेवा के लिये एक वस्तु की आवश्यकता है वह यह कि आप किसी शिल्पकार को आज्ञा दें कि वह लोहे की आदमी की मूर्ति जैसी मैं कहूँ बना दे और उससे मैं तुरन्त सिंह का प्राणच्छेदन करूँगा।" राजा ने एक लोहार को मूर्ति बनाने की आज्ञा दी। लोहे की एक पोली मूर्ति बनाई गई जिसके हाथ पांव और शरीर के सब भागों में लोहे की शल्लकें लगी थीं। रत्नसिंह इस भारी लोहे की मूर्ति को नगर से बाहर लाया जहाँ सिंह प्रति दिन आदमियों को खा जाता था और स्वयं उसके भीतर बैठ कर सिंह की बाट देखने लगा।

रात्रि को सिंह अपने शिकार की खोज में निकला। रत्न-सिंह ने उसका आहट सुनकर ललकारा। सिंह मनुष्य के शब्द को सुनकर तुरन्त उस लोहे की मूर्ति पर आया। रत्नसिंह ने भी तुरन्त ही मूर्ति के बाहर निकल कर तलवार से सिंह पर आक्रमण किया और पल भर में उसे मार कर पृथ्वी पर

डाल दिया। फिर सिंह के शरीर को उठाकर अपने घर लाया और उसे अपनी खाट के नीचे डालकर सो रहा।

वीरसिंह तथा और सब लोगों का यह ख्याल था कि रत्नसिंह सिंह को न मार सकेगा किन्तु स्वयं उसके मुख का ग्रास बनेगा; सबसे पहले वीरसिंह उसके घर आया। आदमियों ने कहा—'सरदार अभी सो रहे हैं।' वीरसिंह ने जगाने की आज्ञा दी। रत्नसिंह घबराकर उठा और वीरसिंह को देखकर डरा कि कहीं भेद न खुल जाय और इसीलिये वह उससे मिलने से पहले दूसरे कमरे में चला गया और स्नान कर वस्त्र पहिन कर मित्र से मिला। जब राजकुमार वीरसिंह ने सिंह को उसकी खाट के नीचे पड़ा देखा, उसको बड़ा आश्चर्य हुआ और प्रीति की आंखों से मित्र की ओर देखने लगा इतने ही में राजा का आदमी बुलाने आया। रत्नसिंह ने सिंह को राजा के सामने ले जाने की अपने आदमियों को आज्ञा दी। राजा सिंह को देखकर अति प्रसन्न हुआ और अपने हाथ की अँगूठी निकालकर रत्नसिंह को दी और उसकी वीरता और चतुरता की बड़ी प्रसंशा की।

सिंह को वध करने से लोगों का हृदय और भी रत्नसिंह की ओर खिंच गया और लोग उसका बड़ा आदर करने लगे, राजा भी अत्यन्त प्यार करने लगा। वीरसिंह तो अपने मित्र की प्रशंसा ही में तमाम समय बिता देता था और उससे ऐसी प्रीति थी मानो दोनों एक ही जीव थे।

एक दिन वल्लभीपुर का राजा शिकार खेलने के लिए जंगल को गया हुआ था। राजा को शिकार से अत्यन्त प्रीति थी और इसी कारण वह जंगल में बहुत काल तक चित्त मोहन

करता रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि एक समीपवर्ती राजा वल्लभीपुर की राजधानी को राजा विना पाकर चढ़ आया और उसने अपना अधिकार जमा लिया और नगर के चारों ओर दृढ़ पहरा बिठा दिया। वीरसिंह भी शत्रुओं ही के अधिकार में था। उस समय वह बीमार था और इसी कारण राजा के संग जा भी न सका था। इसी बीमार दशा में वह शत्रुओं के हाथ में आ गया। राजा इस खबर को सुनकर अति दुःखी हुआ। रत्न से कहने लगा—"वीरसिंह तो बीमार था, यदि कुछ आंच आई तो मेरा जीवन भी कठिन है। यदि वह मुझे मिल जाय तो तुरन्त ही शत्रुओं से अपना राज छीन लूँ।"

रत्नसिंह ने उत्तर दिया—"महाराज! वीरसिंह मेरा बड़ा प्यारा मित्र है, मेरा जीवन सदा उस पर निछावर होने को तैयार है। मैं अपनी शक्त्यनुसार ऐसा उपाय करूँगा कि वीरसिंह को तनिक भी आंच न लगे। और यदि मेरा उपाय सफल न हुआ तो फिर रत्न भी अपने मित्र के ही संग परलोक गमन करेंगे। आप निश्चय रक्खें। मैंने अपने चतुर-चतुर दूतों के द्वारा मालूम कर लिया है कि वह किले में बन्द है! शत्रुओं ने भी अभी तक आपके महल पर अधिकार नहीं जमा पाया है। और यदि ईश्वर की दया हुई तो इन सब को अधोमुख कर दूंगा।" अभी यह बातचीत हो ही रही थी कि एक दूत ने आकर कहा—"महाराज! वीरसिंह ने अवसर पाकर कई आदमियों को मार डाला। अब शत्रुओं ने उसे जंजीर से बांधकर एक कोठरी में डाल दिया है।" यह सुनते ही रत्नसिंह की आंखें क्रोध के मारे बिल्कुल रक्त वर्ण हो गईं और राजा से कहने लगा—"महाराज! इसी समय चढ़ाई करने की आज्ञा

दीजिये, हम शत्रुओं को मार २ कर पृथ्वी पर सुला देंगे।" राजा बोला—"बेटे! आदमी कहां हैं, तू कैसे चढ़ाई करेगा?" रत्नसिंह ने कहा—'आप मुझ पर विश्वास रखिये और शैला गाँव की ओर चलिये। हम केसरीसिंह से सहायता लेंगे और फिर आप देखेंगे कि रत्न किस प्रकार अपनी जान जोखम में डालता है।"

कहने की देर थी राजा शैलापुर की ओर चल दिया। रत्न भी अपना घोड़ा चमका कर सब से आगे आया और केसरसिंह के किले में पहुंच कर कहने लगा—'राजन् नगधारी अँगूठी के खत का परिचय देकर आप से प्रार्थी हैं कि छटे-छटे वीरों को संग लेकर चलिये।' रत्न के मुख से ज्योंही अँगूठी का शब्द निकला त्योंही केसरीसिंह ने उसे पहचान लिया रत्नसिंह इन सबको लेकर वहां पहुंचा जहां सुन्दरबाई के लिये सुरंग खोदी गई थी, और वल्लभीपुर के राजा से कहने लगा—'अब आप की भलाई केवल इसमें है कि आप मुझ पर विश्वास करें। यह सुरंग आप के किले में गई है, इसके अतिरिक्त और कोई राह नहीं जिससे आप अपने महिल में पहुँच सकें वहां पहुंच कर शत्रुओं को पराजय करना क्षणमात्र में सम्भव है।

राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और विचारने लगा कि—'देखो, मुझे तो अपने महिल की सुरंग का तनिक भी ज्ञान नहीं, यह कहां से जान गया?' परन्तु रत्न राजा का विश्वास-पात्र बन चुका था इसी कारण वे सब के सब बहुत से वाद-विवाद के बिना ही सुरंग की राह चल पड़े। जब वे सब सुन्दर

के महिल में पहुँचे तो रत्न ने इन सब की गणना के पश्चात् उन्हें चार विभागों में विभाजित किया, पचास-पचास सवार वल्लभीपुर के राजा और केसरीसिंह और सेनापति के अधिकार में रहे, उसके अधीन केवल २५ सवार ही रहे। अब उसने इन सबके सन्मुख खड़े होकर समयानुसार उचित शिक्षा देकर उन्हें तीन ओरों को भेज दिया और स्वयं अपने आदमी लेकर वीरसिंह के वन्दीगृह के समीप आया और आते ही सब चौकीदारों आदि को परलोक भेज दिया। जब इस प्रकार कोई भी बाकी न रहा जो सन्मुख होकर लड़ता तो वह वहां आया जहां वीरसिंह जंजीरों से बँधा पड़ा था। यह उसकी जंजीरें काटकर छुड़ा लाया और बाहर आकर दोनों मित्र बड़े प्रेम पूर्वक मिले। परन्तु ज्यादा बात करने का समय कहां था, रत्नसिंह ने तुरन्त ही कहा—'आप के पिताजी पूर्व की ओर लड़ रहे हैं, आप मेरा घोड़ा ले जाइये और शीघ्र जाकर उनकी सहायता कीजिये, मैं आपसे फिर मिलूँगा।' वीरसिंह भी अश्वारूढ़ हो क्षण-मात्र में पिता के पास आया। यहाँ राजा ने शत्रुओं का नाश कर दिया था, बहुत से मारे गये और बहुत से कैद कर लिये गये थे। यही हालत और स्थानों में भी हुई थी।

इस प्रकार थोड़ी देर में किला राजा के अधिकार में आ गया। राजा ने वीरसिंह को देखकर कहा—'तुम अब तक [illegible] थे और कैसे आये ?' वह कहने लगा—'मैं अति थकित [illegible] सामर्थ्य नहीं है कि सब हाल कह सकूँ। जब प्रिय [illegible] तो सब हाल कहूंगा परन्तु यह आप भले प्रकार [illegible]ये कि उसी ने मेरे प्राण बचाये हैं। शत्रुओं ने मुझे [illegible] बांध रक्खा था कि मैं कठिनता से दो चार घन्टे

और जीता।" राजा बोला—"रत्नसिंह एक अद्भुत पुरुष है उसने एक बेर मेरी प्रजा की रक्षा की, दूसरी बार राजकुमार के प्राण बचाये और राज्य शत्रुओं से लौटाया।" यहाँ जब यह बातें हो रही थीं रत्नसिंह भी सारे क़िले में अपना चौकी पहरा बिठाकर आया। राजा ने उसे देखकर धन्यवाद दिया और चाहा कि उसे गले से लगावें। रत्न पीछे हट कर कहने लगा—"मैं आपका और राजकुमार का दास हूं। इतना ही मान क्या कम है कि आप मुझे आदमी तो समझते हैं, मैं तो आपका सामान्य सेवक हूं। प्रथम जिस समय मैं आया था तो मैंने निवेदन किया था कि मैंने लड़ाई के कारण अपना देश गृह आदि त्याग दिया है। अब मेरे अच्छे दिन बहुरे हैं, घर से मेरे लिये बुलावा आया है, इसलिये अब मुझे आज्ञा दीजिये, केवल आप से इतनी ही प्रार्थना है।' राजा बोला—'मैं क्षण भर को तुझे आँख की ओट नहीं कर सकता। तेरे माता पिता धन्य हैं जिन्होंने ऐसा वीर पुत्र उत्पन्न किया।" वीरसिंह भी कहने लगा—'हमारी तुम्हारी मित्रता अटल रहेगी, तुम ने मेरे प्राण बचाये,, आज से यह प्राण तुम्हारे हो गये। मैंने आज पर्य्यन्त ऐसा सच्चा मित्र नहीं देखा। लो यह कटार मैं तुम को देता हूं, इस को अपने पास स्मरणार्थ रक्खो और जब कभी तुम पर कोई आपत्ति आवेगी मैं तुम्हारी सहायता करूँगा!" रत्नसिंह ने कटार हाथ में ले ली और शिर झुका कर कहा—'आप सब महा पुरुषों की इच्छा पूर्ण हो।"

यह दिन इसी प्रकार बात चीत में बीत गया और रत्नसिंह ने आस पास के जमीदारों से कहला भेजा कि—'कल अपने अपने आदमी लेकर राजा की सहायता पर आ जाओ।' इस

राजा बड़ा लज्जित हुआ और अन्त को उसकी आज्ञा से किले का फाटक खोल दिया गया। वीर राजपूत किले से बाहर रणक्षेत्र में आये। खूब ही तलवार चली। ऐसी घमासान की लड़ाई हुई कि अपने पराये की सुध बुध नहीं रही। परन्तु दोनों तरफ क्षत्री वीर थे, दोनों को रणक्षेत्र में पीठ दिखाने से घृणा थी। राजा के पास सेना बहुत कम थी, उसके बहुत से आदमी मारे गये थे और थोड़ी ही देर में राजा शत्रुओं के अधिकार में हो जाता कि पीछे से एक सवार का दल आकर शत्रुओं पर टूट पड़ा।

जब शत्रुओं ने देखा कि इधर तो राजा रण में डटा है और दूसरी ओर से और वैरी सब सेना को मारे डालते हैं तो वे तीसरी तरफ भाग निकले और वल्लभीपुर की जय रही। रत्नसिंह राजा के पास आकर कहने लगा—"यह लोग जो पीछे से आये थे आपके रईस लोग थे, मैंने कल उन से कहला भेजा था कि आप लोग यहाँ आवें मुझ में सेनापति होने की योग्यता नहीं, इसलिये आप से क्षमा माँगता हूँ। अब आप इन आगत पुरुषों के आदर मान का इन्तजाम कीजिये कि यह प्रसन्न हों और अब शत्रुओं को आप के सन्मुख होने का कभी साहस न होगा।"

यह कह बिना कुछ उत्तर मिले रत्नसिंह किले को आया और देखते २ आँखों से ओझल हो गया। राजा ने वीरसिंह से कहा-"न मालूम यह रत्नसिंह कौन है जिसने इस भाँति हमारी रक्षा की है। इसे सुरंग की राह का हाल कैसे मालूम हुआ? यह एक बड़े आश्चर्य की बात है।"

वीरसिंह को भी बड़ा आश्चर्य हुआ परन्तु उसने कुछ भी

उत्तर न दिया। जब बिलकुल शत्रुओं का भय जाता रहा तो रत्नसिंह की खोज की गई परन्तु वह कहीं न मिला। अन्त को एक आदमी ने कहा—"मैंने उसे सुन्दर बाई के महिल की ओर जाते देखा था।"

जब वीरसिंह ने सुना कि रत्न सुन्दर के महिल की ओर गया है, उसके चित्त में भांति २ के ख्याल पैदा होने लगे। उसने सोचा—'कहीं सुन्दर धर्म-पतित तो नहीं हो गई और इसी से रत्नसिंह को उस सुरंग का हाल ज्ञात हुआ हो।' उसी समय वह नंगी तलवार लेकर क्रोध से थर-थर काँपता सुन्दर के महिल को गया। सुन्दर बाई पति को देखकर उठ खड़ी हुई। वीरसिंह ने कहा—'अरी दुष्टा पापिनी! रत्न कहाँ है?"

सुन्दर बाई ने कह—'प्राणनाथ! आप किस रत्न को पूछते हैं?'

वीरसिंह—'वह रत्न जो मेरा शत्रु मित्र है, जिसने सुरंग की राह से जाकर मेरी जान बचाई थी। अरी अभी उसे बता कहाँ है, मैं तुरन्त उसका शिर तलवार से काट दूं।"

सुन्दर बाई—'प्राणाधार पति! जिसने आपकी जान बचाई क्या उसका यही परिणाम होगा।"

वीरसिंह—राक्षसी स्त्री! वृथा बहुत विवाद मत कर। जल्दी बता तूने उसे कहाँ छिपा रक्खा है?"

सुन्दर बाई—'यह आप क्या कहते हैं, क्या आपने सुन्दर को एक ऐसी नीच स्त्री समझ लिया है।"

वीरसिंह—'अधर्मी! तू तर्क कुतर्क बहुत करना जानती है। ...ी ने तो तेरा नाश किया है। अब जल्दी बता नहीं तो मैं इस तल-...र से तेरा ही बध करता हूँ। और क्रोधवश तलवार निकाली।

सुन्दर ने कहा—'स्वामिन्! यह सिर आपका ही है। जिस समय इच्छा हो उतार डालिये। परन्तु इस कटार से नहीं मैं एक और कटार आपको देती हूं उसे आप धारण करके मुझे मारें। आप के हाथ से मरने में मुझे सुख मिलेगा। परन्तु यह अवश्य विचार लीजिये कि आप क्या कर रहे हैं और मुझ पर दृष्टिपात करके देखिये कि वही मुझ में तो कोई चिन्ह आप के मित्र का नहीं मिलता? फिर जो आप की इच्छा हो वह कीजिये।"

रानी ने कटार वीरसिंह को दे दी उसने उसकी ओर कड़ी दृष्टि से देखा और तुरन्त ही बाग और मन्दिर की बात उसे स्मरण हुई और उसके मुख से यह शब्द निकले—'सती तू पवित्र देवी है। मैंने बड़ा अनर्थ किया।' यह कहकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और अचेत हो गया। सुन्दर ने पति को उठा कर खाट पर लिटाया और मुख पर गुलाब छिड़का। थोड़ी देर पीछे अचेत को चेत हुआ। प्रथम तो उसने बड़े आश्चर्य से इधर उधर देखा फिर कहने लगा—सुन्दर तू कहां है?'

सुन्दर बोली—'महाराज, आपके पास बैठी हूं।'

वीरसिंह—'प्रिये! क्या तू मेरे अपराध को क्षमा कर देगी।"

सुन्दर बोई—'महाराज! आपने भला क्या अपराध किया? आप तो मेरे पति हैं, मालिक हैं, प्राणाधार हैं, और जो कुछ हैं सो आप ही हैं। आप ने बड़ी दया की कि मेरी लाज रखली।"

वीरसिंह कैद में कठिनाइयों के कारण अति दुर्बल हो गया था, वह उठा और सती के पांवों के ओर हाथ बढ़ा कर चाहा कि लिपट जायँ। सुन्दर ने कहा—'महाराज! पा मे सुप नि मत

बनाओ।' फिर दोनों स्त्री पुरुष खूब मिले और उस दिन से सचमुच वीरसिंह सुन्दर का दास बन गया।

जब राजा ने सुना कि उसके पुत्र की जान बचाने वाली स्वयं उसकी पुत्रवधू ही थी तो उसके हर्ष की कोई सीमा न रही और स्वयं सुन्दर के महिल में आकर कहने लगा—'बेटी तू धन्य है, तू सच्ची राजपुत्री है। क्या तू अपने पिता को यह सब वृत्तान्त सुनायेगी जिसके कारण तूने यह भेष बनाया था।"

सुन्दर ने उत्तर दिया—'क्यों नहीं ? अवश्यमेव। महाराज की आज्ञा सिर आंखों पर। आज सायं समय जब माता जी और दूसरे लोग आवेंगे तब मैं सब वृत्तान्त आद्योपान्त कह सुनाऊंगी।"

सायं समय आया। वीरसिंह की माता और दूसरी रानियां, केसरीसिंह और वल्लभीपुर का राजा सब इकट्ठे हुए और उन सबके सामने सुन्दरबाई ने अपना सब वृत्तान्त आद्योपान्त कह सुनाया। केसरीसिंह ने भी अँगूठी से खत निकालने, सुरंग बनवाने और कवचधारी सवार की आज्ञा से सहायता पर उद्यत होने का सब वृत्तान्त कह सुनाया। वृद्ध राजा अपनी खुशी को जब्त न कर सका और सबके देखते-देखते उसने प्रीति के जोश में सुन्दर के सिर को चुम्बन किया और कहने लगा-'धन्य है पुत्री तू और तेरे माता पिता धन्य हैं ! जिन्होंने तुझ जैसी वीर और सुशील पुत्री उत्पन्न की। तू सत्य ही देवी है, वल्लभीपुर धन्य है जहां तेरा विवाह हुआ।' और उसी दिन से सुन्दरबाई का नाम सुन्दर देवी विख्यात हो गया।

इसके सौ डेढ़सौ वर्ष तक जब कभी राजपूत जाड़ों में

अलाव तापने बैठते तो सुन्दर और वीरसिंह की कहानी सब कहते सुनते थे और स्त्री पुरुष सब उसके पराक्रम, पतिव्रत भाव, सत्यता और चातुर्य्यता से शिक्षा ग्रहण करते थे। परन्तु अब न तो वह वल्लभीपुर ही रहा और न कहने सुनने वाले ही रहे, केवल यह वृत्तान्त इस पुस्तक के पृष्ठों में पाया जाता है।

अब न वह दिन और न वह रातें।
रह गईं यादगार वह बातें॥

ईश्वर कृपा करें कि स्त्री पुरुष इस ऐतिहासिक कहानी को पढ़ें और इससे शिक्षा ग्रहण करें।

उर्मिला

वासर ना सुख रैन सुख, ना सुख सपने मांह।
जो नर बिसरे राम को, तिन को धूप न छांह॥
यह तन मन है पीउ को, पिय का लोक औ लाज।
पिय पर सब कुछ वारिहों, जीवन पिय के काज॥

उर्मिला अजमेर के राजा धर्मजगदेव की धर्मपत्नी थी। यह बड़ी चतुर और सुशीला स्त्री थी और राज्य कार्य्य को भी भले प्रकार समझती थी। यद्यपि धर्मजगदेव के और बहुत सी रानियाँ थीं परन्तु सबसे ज्यादा राजा इसी को चाहता था और यह उसके इतनी सिर-चढ़ी थी कि राज कार्य्यों में हाथ बँटाने के अतिरिक्त यह कभी २ उसके संग शिकार को भी चली जाती थी।

जिस समय महाराना धर्मगजदेव अजमेर में राज करता था उसी समय में महमूद गजनवी शाह अफगानिस्तान ने हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की था। पहिले उसने सोमनाथ गुजरात के मन्दिर को लूटा, फिर मुलतान जीता, तत्पश्चात् पृथक-पृथक अपनी-अपनी राज्य रक्षार्थ लड़ते रहे और केवल इसी कारण सदा उनकी हार हुई।

राजा चिन्ताग्रस्त तो अवश्य था। अजमेर के आधीन सदा से कई राजे रहे हैं। धर्मगजदेव ने युद्ध का समाचार सब राज्य भर में भेज दिया, और राजपूतों से कहला भेजा कि— "जिसे अपने कर्तव्य दिखाना हो वह इस समय आकर शत्रु से युद्ध करें।"

यह सत्य है कि इस समय हिन्दू लोग बिगड़ चुके थे और उससे आत्माभिमान, देशाभिमान और ऐक्याभिमान आदि सब शुभ गुण बिलकुल नाश हो ही चुके थे तथापि धार्मिक जोश तो कुछ थोड़ा सा शेष था ही, राजा का संदेशा सुनकर माताओं ने अपने २ सपूतों को बुलाकर कहा—'पुत्रो! आज वह समय आ गया जिसके लिये क्षत्राणियां पुत्र उत्पन्न करती हैं।' बहनें हर्षित प्रतीत होती थीं क्योंकि आज उन्हें ऐसा अवसर मिलने वाला था कि जब वह अपने भ्राताओं की कमर में कटार बांध कर कहती हैं कि—"वीर आज रणक्षेत्र में जाकर धर्म युद्ध करो। और धर्म के लिये प्राण तक गँवा दो।" स्त्रियों को इस बात का अभिमान था कि हमारा पति मेघ की रक्षा में किसी से भी पीछे न रहेगा।

अजमेर पर चढ़ाई की धर्मगजदेव ने यह खबर सुनी। अपनी सेना को तैयार होने की आ दी। और

इससे एक बार पहले वह महमूद को हरा चुका था और यवन बादशाह को उसका लोहा मानना पड़ा था। परन्तु इधर तो घर में ही फूट थी, हा फूट ! तेरा नाश जाय ! तू ही ने हमें सहस्रों बेर यवनों से परास्त करवाया और उनके पावों तले रुँधवाया ! तू अब भी तो हमारा पीछा नहीं छोड़ती अब तुझे और क्या करना शेष रह गया है। हमारी तो यह दशा करदी कि कोई बात तक नहीं पूछता और प्रति दिन नई २ आपत्तियां हम पर आती रहती हैं। खैर ! इसी दुष्टा के कारण महमूद की सदा जय हुई और अभागे हिन्दुओं की सदा पराजय हुई।

अजमेर पर महमूद की चढ़ाई केवल धर्म गजदेव से बदला लेने के लिये हुई थी। पहिले तो उसके पास बहुत सेना थी परन्तु यवनों के संग युद्ध करने में सब नाश हो चुकी थी और कुछ गिने २ से वीर शेष रह गये थे। किसी की सहायता की आशा न थी क्योंकि फूट के कारण हिन्दू लोग कभी भी मिल कर शत्रुओं से लड़े ही नहीं, पृथक २ अपने राज रक्षार्थ लड़ते रहे और केवल इसी कारण सदा उनकी हार हुई।

ऐसे अवसर पर स्त्रियाँ जिन शब्दों से पुरुषों को उत्साहित करके धर्म के युद्ध के लिये भेजती थीं वे यह हैं माता बेटे से कहती थी—"पुत्र ! जा आज मेरे दूध की पवित्रता दिखा दे और देखने वाले सब आश्चर्ययुक्त होकर कहने लगे कि यह असल क्षत्री है। पवित्र कोख से उत्पन्न हुआ और जानता है कि प्राण किस कार्य में लगाने चाहियें। पुत्र ! जा और राजा के झण्डे के नीचे तेरा घोड़ा हिनहिनाता निकले, वह सब के आगे रहे

और तेरी कटार से शत्रु भयभीत होवें । पुत्र ! जा धर्म की, राज की, देश की रक्षा कर । जिस गृह में एक भी वीर पैदा हो जाता है उसकी सात पीढ़ी तर जाती हैं । पुत्र ! जा और या तो रणक्षेत्र में शत्रुओं को परास्त कर अथवा स्वयं रणभूमि से सीधे स्वर्गलोक को गमन करना परन्तु शत्रुओं को पीठ न दिखाना । मैं बलि जाऊँगी जब सुनूंगी कि मेरे (आत्मज) पुत्र ने क्षात्रधर्म का पालन किया और तब ही मेरा हृदय ठण्डा होगा ।'

बहिनें भ्राता को कवच पहना और कटार को कमर से बाँध कर कहती थीं—'वीर ! पवित्र माता पिता के जाये ! देख ! भावजों का ध्यान छोड़ कर तू धर्म युद्ध करने जाता है । देख बहिन की बात याद रखना, तेरे शरीर पर चाहे सहस्रों घाव हो जावें तथापि पीछे मुख न करना, सौ को मार कर मरना । और जब मुझ से कोई कहेगा कि तेरे भाई के अग्र शरीर में तो घाव हैं पर पीठ पर एक भी नहीं तो मैं अति हर्षित होऊँगी । तेरे सिर से मोती माया की न्योछावर करूंगी घर आना तो शत्रुञ्जय होकर आना, नहीं तो रणक्षेत्र ही से शत्रुओं के मृतक शरीरों की सीढ़ी बनाकर सीधे स्वर्गधाम को चले जाना ।'

स्त्री अपने पति से कहती थी—'मेरे शिर के मुकुट ! ऐसे सुअवसर सदा नहीं आते । क्षत्री का सुख संग्राम में है घोड़े और वीर केवल रणभूमि में ही जागते हैं । अब तक आप सो रहे थे, अब जागने का समय आगया । जाओ संसार भर को दिखा दो कि सिंह जाग उठे हैं या तो शत्रुओं को [illegible]ख करके आओ वा स्वर्गलोक में जाओ और आनन्द

करो । प्राणनाथ ! कोई मुझ से यह न कहे कि तेरा पति संग्राम में अपना कार्य न कर सका । मेरी लाज आज आप के ही हाथ है । संसार में कोई सुख नहीं सब से महान् सुख वही है जो स्वर्गधाम में मिलता है ।"

इस प्रकार की बातें ऐसे अवसरों पर क्षत्रियों में होती थीं । इससे प्रगट है कि उनके कैसे उच्च भाव थे । धर्मजगदेव के संदेशे को सुनकर सहस्रों राजपूत वीर इकट्ठे हो गये । राजा ने उन सब को अपनी छावनी में टिकाया । यद्यपि यह सब बिलकुल नवयुवक थे जो कि कभी भी लड़ाई में न गये थे परन्तु इनमें कोई ऐसा न था जो राजा के लिये प्राण देने से मुख मोड़ सके ।

महाराणी उर्मिला भी अचेत न थी, वह हर बात को जानती थी और सब काम उसकी सलाह से होता था । यथा सम्भव उसने सेना के ठीक करने में भी बहुत सहायता दी । जिस रात्रि की सुबह को लड़ाई होने वाली थी उसी रात्रि को राजा एक पहर रात्रि रहे उठा और शौच सन्ध्यादि कर्मों से निवृत होकर, सेना के लेने के लिये छावनी को जाने लगा, उसी समय महाराणी उर्मिला देवी कहने लगी—"प्राणनाथ ! यदि आप आज्ञा दें तो मैं भी आपके संग रण को चलूं । मेरे लिये महल अब वासस्थान नहीं है, मेरा स्थान तो आप के बाईं ओर है । सुख दुख में हर एक समय आप के संग रहने का अधिकार मुझे है । मेरी इच्छा है यदि आप आज्ञा करें तो मैं भी युद्ध के वस्त्र धारण करके आप के संग चलूं और इस देह को आप पर न्योछावर करके अपना जन्म सफल करूँ, ऐसा समय मुझे फिर कब मिलेगा ।"

राजा भी रानी की बातों को सुनकर अति प्रसन्न हुआ और हँस कर कहने लगा—"धन्य हो महाराणी धन्य हो! मुझे आप को संग ले चलने में कोई भी उग्र नहीं, मुझे दृढ़ विश्वास है कि जिस समय तेरी कटार रणक्षेत्र में चमकेगी, शत्रु लोग भयभीत होकर भाग जावेंगे। परन्तु कई एक बातें ऐसी हैं जिन पर विचार करना तुम्हारा काम है। प्रथम तो यह कि तुम्हारे संग होने के कारण मुझे तुम्हारी ही रक्षा की चिन्ता रहेगी और ऐसा भी सम्भव है कि चिन्ता के कारण मैं अपना कार्य न कर सकूंगा। द्वितीय यह कि आज कल वर्षा के दिन हैं, काली २ घटायें छा रही हैं, दामिनी दमक रही है। जब वर्षा होती होगी तो तुम्हारा क्या हाल होगा। उस समय मुझे तेरी अवस्था देखकर तरस आवेगा और मैं अपने को भूल कर तेरी रक्षा की चिंता में पड़ जाऊँगा। तीसरी मैं अजमेर में एक ऐसे आदमी को छोड़ना चाहता हूँ जो राज व्यवस्था ठीक २ चला सके और जब मुझे अधिक सेना की आवश्यकता हो तब समय पर भेज सके। तुम यह सब कुछ कर सकती हो, अब जो कुछ तुम उचित जानो वह करो।"

रानी ने यह सब बातें ध्यान पूर्वक सुनीं और फिर हँस कर उसके कन्धे पर हाथ रख कर कहने लगी—"आपकी आज्ञा शिर आँखों पर। ईश्वर आपकी रक्षा करे और आप कुशल पूर्वक शत्रुओं को जीत कर आवें। यदि और प्रकार का समय भी आ गया है तो भी कुछ शोक नहीं आप सदा उर्मिला को अपने संग पावेंगे। अब आप प्रसन्नता पूर्वक जाकर अपना कार्यारम्भ कीजिये।"

बस दोनों स्त्री पुरुष अन्तिम बार एक दूसरे से मिले।

राजा छावनी में आया। प्रस्थान का बाजा बजाया गया। राजपूत सब सजे सजाये बैठे थे, आज्ञा पाते ही अपने अपने घोड़ों पर सवार हो रण को चल दिये, ऐसा घमासान हुआ कि आकाश मानो अग्नि देवता का ही निवास स्थान बन गया था। राजपूत ऐसी वीरता से लड़े कि शत्रुओं के छक्के छूट गये, परन्तु हिन्दुओं के नाश का समय आ गया था। एक यवन के तीर ने राजा को बेकाम कर दिया। वह सँभलना चाहता था कि दूसरे तीर ने उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। राजपूतों को राजा के परलोक गमन से अत्यन्त शोक हुआ परन्तु वे और भी दिल तोड़कर लड़े। सायंकाल को वे राजा के शव को किले में लाये और उस पर पुष्प वर्षा की। जब रानी ने सुना कि राजा स्वर्ग को सिधारे तो वह बाहर आई, और शव को शोकार्त्त आंखों से देखकर इर्द-गिर्द की स्त्रियों और पुरुषों से उसने कहा—"अभी चिता तैयार करो।"

बहुत सी स्त्रियों ने उसके चारों तरफ इकट्ठी होकर उसे सती होने से रोकना चाहा, पुरुषों ने कहा—"माताजी' आप हमें युद्ध की आज्ञा देवें और हम पर राज्य करें। यह समय सती होने का नहीं है।" उर्मिला हँसकर कहने लगी—"राजपूतों का यह समय आगया जिस समय के लिए राजपूतनियां पुत्र जनती हैं। राजा ने अपना धर्म पालन किया, कल तुम भी अपना धर्म पालन करोगे।"

और फिर स्त्रियों से कहने लगी—"जिस काम के लिये राजपूतनियां कन्या जनती हैं उससे मुझे मत रोको, तुम स्वयं भी उसी कार्य को करो और अपने २ धर्म पर दृढ़ रहो।"

तब फिर धर्म के घर की वृद्ध स्त्रियां उसे समझाने लगीं—"पुत्री, तू धैर्य धर, जल्दी न कर।"

उर्मिला ने कहा—"माताजी! सुख दुःख का संगी तो संसार से उठ गया, जब जीव शरीर से निकल जाता है तो मूर्ख ही उसे घर में रखते। मैं अब जीवित नहीं किन्तु मर चुकी, आप ही बता दें कि अब संसार में मेरा क्या है? जिस सिर से मुकुट उतर गया यदि वह अपने राज्य में रहे तो उसके समान निर्लज्ज संसार में और कौन होगा? जिस की लाज जाती रही उसको मृत्यु ही अच्छी। जिसका कोई भी मित्र नहीं रहे उसकी जीने की आशा व्यर्थ है। इसी प्रकार जिस स्त्री का पति नहीं उसका जीवन संसार में बिलकुल व्यर्थ है। मैंने राजाजी से कह दिया था कि मैं भी आप के पीछे पीछे आऊँगी। मेरी आत्मा अब भी राजा के संग है, यहां तो केवल यह पिञ्जर पड़ा है। इसलिये आप कोई भी मुझे न रोकिये।"

सती की दृढ़ प्रतिज्ञा को देखकर उसके लिए उसी समय चिता चुन दी गई और वह राजा के शव को लेकर बैठ गई और फिर उसमें आग लगा दी गई। अब अग्नि खूब प्रचण्ड हुई और ज्वाला निकलने लगी तो सब राजपूत और राजपूतनियां अन्तिम दर्शन को आगे बढ़े। रानी ने उन सबसे कहा—"राजपूत! देश और राज की लाज तुम्हारे ही हाथ है, कल ही तुम अपने-अपने राजा का अनुकरण करके संसार को दिखा दो कि राजपूत लोग कभी भी मृत्यु से भय नहीं खाते, वे केवल अपमान को बुरा समझते हैं और अपने-अपने देश कारण प्राण त्याग करना धर्म और नाम समझते हैं। यदि

जीयो तो राजपूतों की तरह, यदि मरो तो राजपूतों की तरह कभी भी राजपूतों के नाम को कलंकित न करना। यह राज तुम्हारी माता है और तुम उसके पुत्र हो, माता की रक्षा करना तुम्हारा धर्म है। राजपूतनियों! शत्रु सामने हैं, स्त्रियां सब कुटुम्ब की लाज हैं। मायें, बहिनें, स्त्रियां अपने अपने सम्बन्धियों को सुमार्ग पर ले चलें। सब अपना धर्म पालन करें। यदि राज है तो स्वतन्त्रता है, धर्म है तो सौर, नहीं तो जो मार्ग तुम्हारी रानी ने ग्रहण किया है उसी पर तुमको भी चलना चाहिए।"

यह कह ही रही थी कि ज्वाला भभक कर निकलने लगी और उसके वस्त्रों और बालों में आग लग गई, हाथ जलने लगा, सीना जलने लगा परन्तु सती वैसे ही धैर्यपूर्वक पति को गोद में लिए बैठी रही, और थोड़ी देर में जल कर भस्म हो गई। जिन्होंने इस अवसर को देखा वह कभी भी इसे भूल न सकेंगे।

दूसरे दिन रानी की आज्ञानुसार सब राजपूत और राजपूतनियों ने अपना अपना धर्म पालन किया परन्तु इससे हमारी कथा का कोई सम्बन्ध नहीं इसलिए उसे यहीं छोड़ते हैं।

उर्मिला धन्य थी, उसका साहस धन्य था। जो स्त्री पुरुष इस वृत्तान्त को पढ़ें ईश्वर करे वह अपने धर्म कर्म को समझें, यही हमारी प्रार्थना है।

महत्व ही को जानता है। जिसके चित्त पर सत्य का अधिकार हो जाता है उसकी गति ही और से और हो जाती है। संसार की वस्तुयें उसे अपने फंदे में नहीं फँसा सकतीं। यद्यपि बाहरी आडम्बर के देखने वालों के विचारानुसार उसका जीवन एक दुःख का जीवन होता है तथापि सत्य उसको एक विचित्र प्रकार का धैर्य दे देता है। जो सदा उसके घावों के लिये मरहम का काम करता है और ईश्वर की कृपा से उसका अन्त भी भली भाँति कृतार्थ होता है।

राजबाला वैशलपुर के ठाकुर प्रतापसिंह की पुत्री थी, वह केवल सुन्दरता ही में अद्वितीय न थी किन्तु धैर्य और चातुर्यादि गुणों में भी कोई इस के समान न था। अपने पति को वह प्राणों से अधिक प्यार करती थी और उसको जीवन भर में कभी भी ऐसा अवसर न आया कि उसने अपने पति की इच्छा के प्रतिकूल कोई काम किया हो।

इसका विवाह रियासत अोमर कोटा की सोढ़ा राजधानी के राजा अनारसिंह के पुत्र अजीतसिंह से हुआ था। अनारसिंह के पास एक बहुत बड़ी सेना थी जिससे कभी वह लूट मार भी किया करता था। एक समय ऐसा हुआ कि राव कोटा का राज्यकोष कहीं से आ रहा था। अनार अपने आदमियों को लेकर उस पर चढ़ गया। राव के भी वह वीर सिपाही थे। परस्पर खूब संग्राम हुआ। अन्त को अनारही की पराजय हुई और उसकी सब सेना तितिर बितिर हो गई। इस पराजय के कारण अनार को सोढ़ा में बसना असम्भव होगया। राजा ने सब जागीर छीन ली और उसे देश निकाले की आज्ञा दी गई। अनार अपने ही किये पर पछताता था परन्तु क्या करता, अब तो जो कुछ हो गया सो हो गया।

अन्त को विचारा सोढ़ा को छोड़ कर दूसरे राज्य के एक छोटे से ग्राम में जा वसा। उसका हाथ तो पहिले ही से तंग था अब और भी हाल खराव हो गया, और यहां तक कि अन्त में दुःख और लाज के मारे उसने प्राण तज दिये। ठकुरानी अजीतसिंह को बड़े कष्ट उठा कर पालने लगी। बालक की अवस्था उस समय तेरह वर्ष की होगी, किन्तु बाँकपन और वीरता में अपने सहवासियों से कहीं बढ़कर था इस कुल की धीरे २ यह गति हो गई कि अजीतसिंह की माता दूसरों का काम काज करके निर्वाह करने लगी, और इस प्रकार उस दुखिया ने भी कुछ समय पीछे परलोक को गमन किया।

राजवाला के संग अजीत के विवाह की वात चीत उसके पिता के जीते जी हो चुकी थी। यद्यपि यह कुल अति दरिद्री हो गया था परन्तु राजपूत लोग सदा से इस प्रकार की वात चीत का अति सम्मान करते थे। राजपूतनियें भी प्रायः अति हठी होती थीं। एक वेर जब कभी किसी के संग उनका नाम निकल जाय फिर वह कभी भी दूसरे के संग विवाह करना उचित न समझती थीं।

अजीत अव विलकुल अनाथ था। विचारा किसी प्रकार अपना निर्वाह न कर सकता था। उसे आशा थी कि युवा होने पर शायद कोटा का राजा मेरी जागीर मुझे दे देगा, वस इसी आशा से जीता था। एक समय उसने एक राजपूतनी को प्रताप के यहाँ इसलिये भेजा कि वह विवाह करने को राजी है या नहीं ? उस समय राजवाला भी युवती थी। वह विवाह का समाचार सुनकर सहेलियों से कहने लगी—"वहिनों! मैंने अपने पति को नहीं देखा वे कैसे हैं ?" वे वोलीं—"तुम्हारे

पति अति सुन्दर, बुद्धिमान् और वीर हैं।" पति की प्रशंसा सुनकर राजबाला अति प्रसन्न हुई और कहने लगी—"मेरा पति वीर है, चतुर है और सुन्दर है, ये ही सब बातें राजपूत में होनी चाहियें। सब कहते हैं उसके पास धन नहीं है न सही, जहां बुद्धि और पराक्रम है वहां धन आप ही आ जाता है।"

राजबाला ने किसी भाँति उस राजपूतनी से मिलकर कहा—"तुम जाकर मेरे पति से कहो यहां लोग तुम्हारी दरिद्रता का समाचार कहते रहते हैं, परन्तु मैं तो आपकी आज से नहीं कई वर्ष से हो चुकी हूं। आप मेरे पति हैं, मैं आपकी बुराई सुनना नहीं चाहती । इसलिये आप स्वयं आकर पिता जी से कहके मुझे ले जाइये। गरीबी अमीरी में सदा मैं आपका साथ दूंगी । किसी का वश नहीं कि बात को लौट सके। यदि विवाह होगा तो आपके साथ होगा नहीं तो राजबाला प्रसन्नता पूर्वक प्राण त्याग करेगी।"

जिस समय राजपूतनी ने राजबाला का संदेशा कहा, अजीत अति प्रसन्न हुआ और कहने लगा—"कैसे सम्भव है कि मेरे जीते जी कोई राजबाला को ब्याह ले जावे।"

राजबाला के कथनानुसार उसने प्रताप से विवाह के लिये कहला भेजा। उत्तर मिला—"विवाह को हम उद्यत हैं, परन्तु बीस हजार रुपया इकट्ठा करके लाओ जिससे यह मालूम हो कि मेरी लड़की को तुम रख सकोगे । जब तक तुम्हारे पास रुपया न हो विवाह का ध्यान करना व्यर्थ है।"

बात भी उचित थी। कोई दरिद्री पुरुष किस प्रकार किसी कुलीन धनाढ्य की कन्या विवाह सकता है। अजीत अति

गाढ़ शोक-सागर में डूब गया ।
अन्त को उसे जैसलमेर के एक से
यहां से उसके पिता का लेन देन
कहने लगा—"तुम मेरे घराने के
हजार रुपये के बिना मेरा विवाह
करना आवश्यक है, परन्तु तुम ज
न जागीर है और न कुछ है । य
करके और मुझ पर विश्वास क
सको तो दे दो । मैं सूद सहित नि

सेठ ने अर्जुन को बड़े ध्य
यह बीस हजार रुपये रक्खे हैं,
यह शपथ करके कि जब तक
तब तक अपनी स्त्री के पास
रुपया लेलो ।"

ऐसे वचन को निवाहना
रुपया मिलने का और कोई उ
राजी हो गया और रुपया
बात चीत के अनुसार विवा
जरा भी खबर न हुई कि यह

विवाह के पीछे रीति के
के लिये एक महल दे दिय
रहे परन्तु जभी सोने का
तलवार बीच में रख कर
प्रकार के वर्ताव से बड़ा
लगी—"सचमुच मेरा पति

है पर न मालूम नंगी तलवार रखकर सोने का क्या मतलब है?"

इसी तरह कई दिन बीत गये परन्तु उसे इतना साहस न हुआ कि कुछ पूछती। अन्त को एक दिन दोनों में बात चीत होने लगी। राजबाला ने साहस करके पूछा—"प्राणनाथ! मैं देखती हूं कि आप प्रायः ठण्डी और गहरी स्वाँसें लेते रहते हैं, इससे ज्ञात होता है कि आपको कोई बड़ा कष्ट हो रहा है। मैं तो आपकी दासी हूँ मुझ से छिपाना आपको उचित नहीं है। मैं विचार करूँगी कि किस प्रकार आपकी चिन्ता दूर हो सकती है।"

राजबाला की बात सुनकर उसका दिल भर आया और मुख नीचा करके उसने चुप्पी साध ली।

राजबाला ने फिर कहा—"प्राणाधार! घबराने की कोई बात नहीं है। इस संसार में सब ही पर एक न एक आपत्ति आती है। चिन्ता व्यर्थ है। संसार में हर रोग की औषधि उपस्थित है। आप चिन्ता न कीजिये मुझ से कहिये। यथा सम्भव मैं आपकी सहायता करूँगी। यदि मेरे मरने से भी आपका भला होता है तो मेरे प्राण आपकी सेवा को हर समय उद्यत हैं।"

सत्य तो यह है कि इस संसार में स्त्रियाँ परमेश्वर की भेजी हुई देवियां हैं, जो पुरुषों की सहायता के लिये भेजी गई हैं। वही उनका दुःख बटाती हैं, वे ही कभी उनके क्रोध को शांत करती हैं, कभी अपनी मीठी २ बातों से उनके हृदय को अपने वश में कर लेती हैं। इसमें संदेह नहीं कि यदि

यह शोक-सागर में डूब गया । परन्तु विचारा क्या करता। अन्त को उसे जैसलमेर के एक सेठ का ध्यान आया जिसके यहां से उसके पिता का लेन देन था। यह सेठ के पास आकर कहने लगा—"तुम मेरे घराने के पुराने महाजन हो. बीस हजार रुपये के बिना मेरा विवाह नहीं होता है। विवाह में काम करना आवश्यक है, परन्तु तुम जानते हो मेरे पास इस समय न जागीर है और न कुछ है। यदि पुराने सम्बन्ध का विचार करके और मुझ पर विश्वास करके मुझे बीस हजार रुपया दे सको तो दे दो। मैं सूद सहित निपटा दूंगा।"

सेठ ने अजीत को बड़े ध्यान से देखकर कहा—"यह लो यह बीस हजार रुपये रक्खे हैं, ईश्वर को बीच में देकर और यह शपथ करके कि जब तक तुम मेरा रुपया न निपटा दोगे तब तक अपनी स्त्री के पास जाने में अधर्म समझोगे, यह रुपया लेलो।"

ऐसे वचन को निबाहना बड़ी कठिन बात थी, परन्तु रुपया मिलने का और कोई उपाय न था । निदान दुखिया राजी हो गया और रुपया लेकर अपनी ससुराल आया। बात चीत के अनुसार विवाह कर दिया गया। यह किसी को जरा भी खबर न हुई कि यह रुपया कहां से लाया।

विवाह के पीछे रीति के अनुसार दुलहा दुलहिन दोनों के लिये एक महल दे दिया गया। यह कई दिन तक उसमें रहे परन्तु जभी सोने का समय आवे तभी अजीत नंगी तलवार बीच में रख कर सोवे । राजबाला को उसके इस प्रकार के वर्ताव से बड़ा आश्चर्य हुआ और मन में कहने लगी—"सचमुच मेरा पति बड़ा सुन्दर, चतुर और वीर

है पर न मालूम नंगी तलवार रखकर सोने का क्या मतलब है ?"

इसी तरह कई दिन बीत गये परन्तु उसे इतना साहस न हुआ कि कुछ पूछती। अन्त को एक दिन दोनों में बात चीत होने लगी। राजबाला ने साहस करके पूछा—"प्राणनाथ ! मैं देखती हूं कि आप प्राय: ठण्डी और गहरी स्वाँसें लेते रहते हैं, इससे ज्ञात होता है कि आपको कोई बड़ा कष्ट हो रहा है। मैं तो आपकी दासी हूँ मुझ से छिपाना आपको उचित नहीं है। मैं विचार करूँगी कि किस प्रकार आपकी चिन्ता दूर हो सकती है।"

राजबाला की बात सुनकर उसका दिल भर आया और मुख नीचा करके उसने चुप्पी साध ली।

राजबाला ने फिर कहा—"प्राणाधार ! घबराने की कोई बात नहीं है। इस संसार में सब ही पर एक न एक आपत्ति आती है। चिन्ता व्यर्थ है। संसार में हर रोग की औषधि उपस्थित है। आप चिन्ता न कीजिये मुझ से कहिये। यथा सम्भव मैं आपकी सहायता करूँगी। यदि मेरे मरने से भी आपका भला होता है तो मेरे प्राण आपकी सेवा को हर समय उद्यत हैं।"

सत्य तो यह है कि इस संसार में स्त्रियाँ परमेश्वर की भेजी हुई देवियां हैं, जो पुरुषों की सहायता के लिये भेजी गई हैं। यही उनका दुःख बटाती हैं, ये ही कभी उनके क्रोध को शांत करती हैं, कभी अपनी मीठी २ बातों से उनके हृदय को अपने वश में कर लेती हैं। इसमें संदेह नहीं कि यदि

स्त्रियां न होती तो न जाने मनुष्य की क्या गति होती ? इनका हृदय एक गहरा समुद्र है जो दया की लहरों से परिपूर्ण है। वे धन्य हैं जिनको इनकी दया का भाग मिलता है। क्योंकि उनके घावों के लिये मरहम और दुख के लिये सुख मौजूद है।

अजीतसिंह ने फिर भी कुछ न कहा और न सिर ऊपर उठाया। राजबाला ने फिर कहा—"प्राणपति ! क्या राजबाला इस लायक नहीं कि आप उस पर विश्वास कर सकें।" बस यह कहना था कि अजीत ने देवी का हाथ पकड़ लिया और दुःख परिपूर्ण शब्दों में अपनी सब कथा कह सुनाई। जब अजीतसिंह यह सब कथा कह चुके तो राजबाला ने कहा—"स्वामिन् ! आपने मेरा बड़ा मोल देकर मोल लिया है। मैं क्या कभी आपकी इस कृपा को भूल सकती हूं। कभी नहीं।" प्राणनाथ ! यह ऐसी जगह नहीं जहाँ बीस हजार रुपया मिल सके। इसलिये इसे छोड़ देना उचित है। मैं इसी समय मरदाना भेष रखती हूँ। मैं और आप संग संग रहेंगे। जब कोई पूछे साले बहनोई बताइये। चलिये फिर परदेश चलकर महाजन के रुपये का उपाय करें।

आधी रात का समय था जब पति पत्नी में इस प्रकार बात चीत हुई। सब लोग बेसुध सो रहे थे। राजबाला ने मरदाना भेष धारण किया और अजीतसिंह और एक विश्वस्त दासी यह दोनों बाहर आये और घोड़ों पर सवार हो एक ओर को चल दिये। कई दिन पीछे दो सुन्दर बाँके युवक घोड़ों पर सवार उदयपुर में दिखाई दिये। उस समय मेवाड़ की गद्दी पर महाराज जगतसिंह राज करते थे। राना महल

पर बैठे नगर को देख रहे थे। नये राजपूतों को देखकर उनका हाल लेने को राना ने दो दूतों को भेजा, थोड़ी देर पीछे दोनों राजपूत राना के सामने लाये गये। जब दोनों राजपूत प्रणाम कर चुके तो महाराज ने पूछा—"तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? और कहाँ जा रहे हो?" अजीत ने उत्तर दिया—"हम दोनों राजपूत हैं। मेरा नाम अजीतसिंह है और दूसरे मेरे साले हैं इनका नाम गुलाबसिंह है वृत्ति की खोज में आप के यहाँ आये हैं। सौभाग्य से आप के दर्शन भी हो गये अब आगे क्या होगा यह नहीं मालूम।" राजा राजपूतों के ढंग को देखकर अति प्रसन्न हुए और राजपूतों के नाम पर मोहित हो राना ने हँस कर उत्तर दिया—"तुम लोग मेरे यहाँ रहो। एक हवेली तुम्हारे रहने को दी जाती है और खान पान के अतिरिक्त पाँच रुपये और दिये जायँगे।

स्त्री-पुरुष दोनों अब उदयपुर में रहने लगे परन्तु बीस हजार रुपये की चिंता सदा लगी रहती थी। कोई उपाय रुपया निपटाने का ज्ञात न होता था। यह वर्षा के आरम्भ में यहाँ आये थे और वर्षा ऋतु बीत गई। अब दशहरा शुभ त्योहार आया जब राजस्थान में बड़ा उत्सव मनाया जाता है और उदयपुर में पाढ़े का बध किया जाता है। राना के संग सब बड़े २ सर्दार घोड़ों पर सवार हुए और संग ही गुलाब और अजीत भी सब के पीछे हो लिये कि इतने में भेदिये ने आकर खबर दी—"महाराज की जय हो! पाढ़े के स्थान में एक सिंह का खबर है।" राना ने राजपूतों से कहा—"वीरो आज का दिन धन्य है कि सिंह आया है, ऐसा अवसर बड़ी कठिनाई से मिलता है। अब पाढ़े का स्थान

छोड़ दो सिंह ही का शिकार करो।" बस फिर क्या था हँकवा करने वालों ने सिंह को जाकर घेर लिया और उसके निकलने के लिये केवल एकही राह रक्खी जिधर राजा और सरदार सिंह की वाट देख रहे थे । राना हाथी पर था और चाहता था कि स्वयं ही सिंह को मारे, इसीलिये उसने और सरदारों को उचित-उचित स्थानों पर खड़ा कर दिया था।

जब सिंह ने देखा कि मुझे लोग घेर रहे हैं तो वह राना की ओर बढ़ा। उसे देखकर राना डर गये क्योंकि उन्होंने कभी भी इतना बड़ा सिंह नहीं देखा था । इसका मारना आसान काम न था। सब सरदार लोग भी डर गये सिंह तड़प कर राना के हाथी पर आया और उसके मस्तक से माँस का लोथड़ा नोंच कर पीछे हट गया। राना के हाथ से भय के मारे तीर कमान भी छूट पड़े। सिंह फिर उछलने को ही था कि गुलाब ने दूर से देखा और अजीत से कहा—"ठाकुर साहिब ! राना की जान जोखों में है। उनको ऐसे कठिन समय में छोड़ना अति कृतघ्नता की बात है। मुझसे अब देखा नहीं जाता । प्रणाम ! मैं जाता हूं।" अजीत को बात कहने तक का भी अवसर न मिला कि गुलाब का घोड़ा तीर की नाईं सनसनाता हुआ आगे हुआ हाथी अपना धैर्य छोड़ चुका था । सिंह फिर उछलने को ही था कि वक्रगति सवार ने आकर उसे अपने भाले पर लिया। भाले सहित सिंह पृथ्वी पर गिरा। बस फिर क्या था सवार ने एक ऐसा हाथ तलवार का मारा कि सिंह का सिर अलग जा पड़ा और उसी समय उसके कान और पूंछ काट कर वैसे ही फुर्ती से अपने स्थान पर आ गया और कान और पूंछ को अपने घोड़े की जीन के नीचे

रख कर और लोगों से धीरे धीरे बात चीत करने लगा। परन्तु इसने इस काम को ऐसी फुर्ती से किया कि किसी को भी न ज्ञात हुआ कि कौन था और किसने सिंह को मारा।

सिंह के मरने पर चारों ओर से राजा की जयजयकार होने लगी। सब लोगों ने अपनी २ जगह से आकर राजा के हाथी को घेर लिया, और सरदारों ने कहा—"ईश्वर ने आज बड़ी दया की। हम सबकी जान में जान आई।" जब सब बधाई दे चुके तो राना ने कहा—"वह कौन आदमी था जिस ने आज मेरी प्राणरक्षा की, उसको मेरे सन्मुख लाओ। मैं उसे पारितोषिक दूंगा।" परन्तु मारने वाला बहुत दूर था और वह अपने को प्रकाशित करना भी नहीं चाहता था राना ने थोड़ी देर तक बाट देखी परन्तु जब कोई नहीं आया तो खुशामदी दरबारी लोग अपने २ मित्रों का नाम बताने लगे। राना ने कहा—"नहीं मैंने उसे जाते हुए देखा है। यद्यपि ठीक ठीक नहीं कह सकता परन्तु पहिचान तो अवश्य ही लूंगा। उसके मुख की सुन्दरता मेरी आँखों में खपी जाती है।" राना की बात सुनकर सब चुप हो गये और सवारी महिल की ओर चली। जब राना फाटक पर पहुंचे तो हाथी से उतर कर आज्ञा दी कि—"एक एक आदमी मेरे सामने से होकर निकल जावें।" आज्ञानुसार पारी पारी से लोग राना के सामने से निकल कर किले में चले गये। जब गुलाबसिंह आने लगा तो राना ने उसे देखकर पूछा—"क्या सिंह के मारने वाले तुम ही हो?" गुलाबसिंह ने सर झुका कर कहा—"जिसको श्रीमान् कहें वही सिंह वध कर सकता है। सिंह की मृत्यु तो आपकी आज्ञा के वश है।" राना बोला मैं सम-

भता हूँ सिंह तुमने ही मारा है, यद्यपि "मैं यह नहीं कह सकता क्योंकि तीव्रगति घोड़े ने मुझे इतना अवसर न दिया कि मैं मारने वाले को पहिचान सकता।" अजीत भी निकट ही था, वह बोला—"अनाथों के नाथ! सिंह के कान और पूंछ नहीं है, इससे ज्ञात होता है कि उसके मारने वाले ने प्रमाण के लिये उसके कान पूंछ काट लिये हैं। राना को और भी आश्चर्य हुआ और कहने लगा—"तुमने तो अभी तक सिंह को देखा भी नहीं है फिर यह बात कैसे जानते हो। तुमने सिंह को भी नहीं मारा।" अजीत बड़ा लज्जित होकर कहने लगा—"महाराज! मैं सिंह का वधिक नहीं हूं किन्तु सिंह का वधिक वह होगा जिसके पास उसके कान और पूंछ होगी।" राना ने गुलाब से कहा—"मैं भूल गया था कि यह बहनोई हैं। अब कान और पूंछ हाज़िर करो।" गुलाब ने तुरन्त घोड़े की जीन के नीचे से निकाल कर उन्हें राना के सामने किया। राना बोला—"राजपूतो! तुम बड़े वीर हो। आज से तुम मेरे संग रहा करो मैं तुमको अपना अङ्ग-रक्षक नियत करता हूँ और आजकी वीरता का तुमको पारितोषिक दूंगा।"

राजा महिल में आया और जान बचने की खुशी में तुलादान किया। यद्यपि यह दोनों राजपूत संग रहते थे परन्तु रात के समय उनको पृथक् २ हो जाना पड़ता था। अजीत तो रात को दरबार में रहता था और गुलाब राजा के सुख-भवन में नियत था। दोनों प्रगट में तो भले प्रकार रहते ज्ञात होते थे, व्यय करने को भी काफी धन मिलता था परन्तु यह हर समय [illegible]-ग्रस्त रहते थे। वर्षा के आरम्भ में ही इनका विवाह [illegible]आ था, बारह महीने बीत गये और सेठ के रुपयों का कोई

भी उपाय न हो सका। बीस हज़ार का एक संग मिल जाना यश, कठिन काम था। दूसरी वर्षा आ गई। रात्रि को आकाश में खूब काली २ घटायें छा रही थीं। दामिनी की दमक छिन-छिन में दुखिया वियोगियों के हृदयों को विदीर्ण किए देती थी। वायु भी अति वेग में वृक्षों को हिला रही थी। उस समय गुलाब रनिवास के फाटक पर था। अजीत राना के संग था। राना ने कहा—"राजपूत! तू जाकर आराम कर मैं भीतर रनिवास में जाता हूं।" यह कहकर राना जयपुर वाली रानी के महिल में चले गये। गुलाब अपनी गति विचार कर यह गीत नीचे स्वर से मलार के राग में गाने लगा—

गीत

आली, रिमझिम बादर बरसे।
बादर गरजे दामिनि दमके, रह रह मोरा जिय तरसे।
मोर-पपीहा बोलन लागे, विरहिन हिय दुख गरसे॥

जब अजीत ने इस राग को सुना उसकी छाती पर साँप सा लोटने लगा और उसने भी उसी स्वर से उत्तर देना उचित जानकर कि गुलाब को ज्ञात हो जाये कि अजीत उसकी ओर से बेसुध नहीं है, यह गाना आरम्भ किया—

"बरसत धरणि अखण्डित धारा बात छुपी नहिं हरसे।
कर्म कि बात प्रबल आली जानौं कैसे पिउपद परसे॥
आली, रिम झिम बादर बरसे।

गुलाब ने अजीत के राग को सुना, उसी समय एक दीर्घ निश्वास लेकर कहने लगा—"सत्य है, प्रारब्ध पर किसी का अधिकार नहीं है।"

जगत् की जयपुरी रानी बड़ी चतुर थी। दोनों गाने वालों के राग की भनक उसके कान में पड़ी। उसने राना से कहा—"मुझे ज्ञात होता है कि यह जो दोनों राजपूत तुम्हारी सेवा में हैं, स्त्री-पुरुष हैं और यह पुरुष जो रनिवास के पहरे पर है अवश्यमेव स्त्री है। कोई कारण है जिससे यह एक दूसरे से नहीं मिलते और मन ही मन कुढ़ते हैं।" राना खूब ठट्ठा मारकर हँसा—"खूब! तुमको खूब सूझी, यह दोनों साले बहनोई हैं। सदा से सङ्ग रहते हैं, आज यह यहाँ ड्योढ़ी पर हैं, नहीं तो उन दोनों में ऐसी गाढ़ी प्रीति है कि कभी अलग नहीं रहना चाहते।" रानी बोली–"महाराज! आप जो कहते हैं सत्य होगा, परन्तु मेरी भी बात मान लीजिये, इनकी परीक्षा कीजिये, आप ही झूँठ सच ज्ञात हो जायगा।"

राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और तुरन्त ही अजीत और गुलाब दोनों को अपने महल में बुला भेजा दोनों बड़े डरे। क्या बात है। क्या कोई नई आपत्ति तो नहीं आई। अन्त को राना के सामने जाकर प्रणाम किया। तब राना ने पूछा—"गुलाब और अजीत, यह बताओ कि तुम दोनों मर्द हो या तुममें से कोई स्त्री है?" दोनों चुप। क्या उत्तर देते? राना ने फिर वही प्रश्न किया—"तुम बोलते क्यों नहीं? जो तुम्हें दुःख हो कहो। मेरे अधिकार में होगा तो अभी इसी समय दूर कर दूंगा। लाज भय की कोई बात नहीं है।" अजीतसिंह ने समझा, परमात्मा ने दया की। आपत्ति का अन्त आ गया। उसने सिर झुकाकर राना से कहा—"अन्नदाता! अपने दासों के माता पिता हो। आपसे कोई भेद छिपा नहीं रह सकता।" फिर उसने अपनी सब कथा आद्योपांत कह सुनाई।

राना ने उस समय अजीतसिंह को कुछ उत्तर न दिया और दासी को बुलाकर कहा—"देखो यह बाई जो मरदाने भेष में खड़ी है, मेरी पुत्री है। इसको अभी महल में ले जाकर स्त्रियों के कपड़े पहिना दो और अलग स्थान महल में रहने के लिये दो और हर प्रकार से इसको आराम दो।" राजबाला राना की आज्ञा सुनकर उसी समय लाज से सिर झुकाये महल में चली गई। जब यह भीतर गई राजा ने अजीत से कहा—"राजपूत ! मैं तेरे बाप दादा के नाम को जानता हूं। तेरा प्रणबद्ध होना धन्य है। मैंने आज तक अपनी आयु में ऐसा योगी नहीं देखा था। तू मनुष्य नहीं किन्तु देवता है। जा अब महल में अपनी स्त्री से बात चीत कर।"

रात को किसी को नींद नहीं आई। प्रातः काल होते ही राना ने बीस हजार रुपया सूद सहित अजीत को दिया। वह उसी समय साँड़नी पर चढ़ जैसलमेर की ओर चल दिया और बनिये के पास पहुंच कर रुपया सौंप दिया। एक साल से अजीत का कोई पता नहीं था, बनिया अपने रुपयों से निराश हो गया था परन्तु उसे कोई रंज न था क्योंकि अजीत के पिता से बहुत कुछ ले चुका था।

अजीत रुपया देकर उदयपुर आया और राना के पांवो पर गिर पड़ा—"अन्नदाता ! आपने मेरी लाज रख ली।" राना ने राजबाला को "प्राणरक्षक देवी" का खिताब दिया और वह उदयपुर में इसी नाम से विख्यात थी वह जब कभी राना के महल में उसके होते हुए जाती, राना उसको पुत्री कहकर पुकारा करता था। स्त्री पुरुष दोनों ही राना के कृपा पात्र बन गये और वह उनको ऐसा प्यार करता था मानों वे उनके ही निज पुत्र थे पीछे से उनके रहने को एक अलग

महल बनवा दिया गया और उनको एक जागीर अलग प्रदान की गई।

यह राजबाला का संक्षिप्त जीवन चरित्र है। यह कोई मन गढ़न्त कथा नहीं है किन्तु जो कुछ लिखा गया है सब सत्य लिखा गया है। एक समय था जब इस प्रकार की पवित्र आत्मायें इस देव भूमि में जन्म लेती थीं, उनकी सच्ची प्रतिज्ञा करने का यह ढंग होता था। परन्तु आज देखिये क्या विपरीत दशा है। औरों को तो एक ओर जाने दीजिये जो लोग मुखिया हैं और मुखिया के शब्द पर जान देते हैं उन्हीं को देखिये क्या दशा है। प्रभात से सन्ध्या तक अपनी २ बात बनाते हैं परन्तु स्वयं कुछ नहीं न अपनी बात का ध्यान न कुछ। बस केवल इच्छाओं की बहुत बड़ी गठरी है। यही तो हमारी कौम का आदर्श है।

परमात्मन्! हम पर दया कर, हम में ऐसी आत्मायें फिर से पैदा हों। अजीत और राजबाला जैसी सत्य प्रतिज्ञा और धर्मारूढ़ हों।

राजबाला तेरा साहस धन्य है। देवी ईश्वर करे हमारी बहिनें तेरा चरित्र पढ़कर और सुनकर सत्य मार्ग को ग्रहण करें क्योंकि सत्य से बढ़कर और कोई दूसरा मार्ग नहीं।

अच्छन कुमारी

सूर सोइ सराहिए, लड़े धनी के हेत।
घाव सहे छाती दहे, तऊ न छोड़े खेत॥

साधु सती और सूरमा, इन सम कोऊ नाहिं ।
अगम पंथ में पग धरे, मौत देख मग काहिं ॥
कायर मुख नहिं देखिये, दर्शन कीजै सूर ।
शांत चित्त आनन्द मन, मुखड़ा बरसे नूर ॥
रन में तप में प्रेम में, कायर का क्या काम ।
साधु सती वा सूरमा, सोहें बिच संग्राम ॥
कबीर सौदा नाम का, मरघन कबहु न होय ।
बात बनाई जग ठगा, वह तो साध न होय ॥

अच्छन कुमारी जयतसी परमार चन्द्रावती के राजा की पुत्री थी। ऐसे कौन से गुण थे जो अच्छन में नहीं थे। वह बड़ी सुन्दर, चतुर धर्मात्मा और सुशीला स्त्री थी। अभी जब वह छोटी थी एक दिन हँसी २ में उसके पिता ने पूछा—"बेटी तू किससे अपना विवाह करना चाहती है?" अच्छन ने कहा—"मैं तो अजमेर के राजकुमार पृथ्वीराज से विवाह करूँगी।" वह पृथ्वीराज अजमेर के राजा सोमेश्वरसिंह चौहान का पुत्र था और अपनी वीरता के लिये विख्यात था। जयतसी ने मुस्कराकर कहा—"अच्छा। परन्तु यदि उसने अस्वीकार किया तो क्या होगा?" अच्छन बोली—"क्या कोई राजकुमार भी किसी राजपुत्री की बात टाल देगा? यदि विवाह न हुआ तो क्या मैं जीवन पर्यन्त कुंवारी रहूंगी।" जयतसी ने तुरन्त ही एक भाट के हाथ पृथ्वीराज के पास नारियल भेजा उस समय छोटी अवस्था में होने के कारण विवाह नहीं हुआ।

इसी समय गुजरात का राजा भोला भीमदेव जो अपनी वीरता शूरता और धन के लिये जगत् विख्यात हो रहा था।

जब उसने सुना कि अच्छनकुमारी बड़ी सुन्दर है तो अपने दूतों को इसका हाल लेने को भेजा। जब दूत थोड़े दिनों पीछे लौट कर गये तो भोला भीमदेव ने पूछा—"कहो क्या देखा?" दूतों ने कहा—"महाराज! सब कुछ पूछिये नहीं। हमें आपने जिसके देखने के लिये भेजा था वह तो ऐसी सुन्दर है कि उसके सामने चन्द्रमा भी लजाता है। उसकी आंखों को देखकर कमल अपनी पंखड़ियां समेट लेता है। ऐसी सुन्दर कन्या संसार में कोई न होगी। वह तो इस योग्य है कि आपकी पटरानी बने।"

भीमदेव बड़ा प्रसन्न हुआ और अपने वजीर अमरसिंह को जयतसी के पास विवाह का संदेशा लेकर भेजा। जयतसी ने बड़े आदर पूर्वक उसका अतिथि सत्कार किया और कुशल पूछने के पश्चात् असल बात आरम्भ हुई। अमरसिंह ने कहा महाराज, गुजरात नरेश चाहते हैं कि आपकी कन्या अच्छन कुमारी को अपनी पटरानी बनावें।"

जसतसी कहने लगा—"भीमदेव से सम्बन्ध करने में मेरे कुल का मान होगा, परन्तु अब मैं क्या कर सकता हूं अब तो जो कुछ होना था होगया।" अमरसिंह ने कहा कि—"इस मना करने का परिणाम यह होगा कि सहस्रों प्राणियों का वध हो और रुधिर की नदियां बहें, चन्द्रावती आपकी नाश की जाय और व्यर्थ की लड़ाई हो।" वह बोला—"मैं तुमको इस का क्या उत्तर दूं। तुम भीमदेव से कह दो कि जब कन्या मंग चुकी तो फिर दूसरी जगह कैसे हो सकती है। बात तो बदली नहीं जा सकती। यदि अनसमझी के कारण कोई वैर भाव करे तो फिर मैं भी तो राजपूत हूं और तलवार चलाना जानता हूँ।

मैं अपनी रक्षा कर लूंगा। परन्तु यह कभी भी नहीं चाहूँगा कि किसी प्रकार का अन्याय हो। चाहे युद्ध ही क्यों न हो भीमदेव के सन्देश का उत्तर यह है कि परमार की कन्या की मँगनी एक जगह हो चुकी है, अब हम किसी भाँति बात नहीं टाल सकते।"

अमरसिंह उसी समय अपनी राजधानी को लौट आया जब भीमदेव ने सुना कि उसकी प्रार्थना अस्वीकार की गई, उसने उसी समय युद्ध की सामग्री इकट्ठी करनी आरम्भ कर दी। चन्द्रावती छोटी सी रियासत थी, जयतसी के पास इतनी सेना कहाँ जो भीमदेव से युद्ध करे। उसने सोमेश्वरसिंह को सहायता के लिये बुला भेजा। जिस समय भीमदेव चन्द्रावती पर चढ़ आया उसी समय सोमेश्वर को खबर मिली कि गोर का बादशाह शहाबुद्दीन एक बड़ी सेना लेकर भारत पर आक्रमण करने के लिये आ रहा है। और खैबर के दर्रे के आगे बढ़ आया है। अब एक ओर तो भारतवर्ष की रक्षा का और एक ओर पुत्रवधू के मान की रक्षा का विचार। इन दोनों विचारों ने सोमेश्वर को बड़े संशय में डाल दिया। अन्त में बहुत सा विचार करने के पश्चात् यह निश्चय किया कि कुल का मान रखना अत्यावश्यक है, परन्तु शहाबुद्दीन के आक्रमण की ओर से भी वह बेसुध नहीं था। स्वयं तो सेना लेकर जयतसी की सहायता को गया और अजमेर में हर प्रकार की युद्ध सामग्री इकट्ठी करने की आज्ञा दे गया।

[illegible] उस समय देहली का मुख्याधिकारी था। उसे [illegible]न्द्रावती के जाने की खबर मिली! वह बैठ

हुआ अपने मित्रों के सङ्ग विचार कर रहा था कि हमको क्या करना चाहिये कि इतने में एक मारवाड़ी ब्राह्मण आया । उसने राजकुमार के हाथ में एक पत्र दिया पृथ्वीराज ने पत्र को लेकर चन्द्रभाट को दे दिया कि वह पढ़े । परन्तु उसने कहा कि--"आप ही पढ़ें ।" पृथ्वीराज ने पत्र पढ़कर सबसे कहा--"महाराज! सोमेश्वर जयतसी परमार की सहायता के लिये चन्द्रावती गये हैं इधर शहाबुद्दीन गोरी भी आक्रमण की नीयत से आ रहा है । पिताजी की आज्ञा है कि मैं अजमेर की रक्षा करूँ परन्तु इधर दूसरी ओर परमार राजकुमारी मुझे अपनी रक्षा के लिये बुलाती है । यह मेरी स्त्री है और इस सब लड़ाई का कारण भी वही है । पत्र की भाषा इस प्रकार थी—

कमलावती के वीर पुत्र ! ❀

गुजरात नरेश भीमदेव ने चन्द्रावती पर आक्रमण किया है । जो २ नगर उसकी सेना की राह में पड़े सब बिलकुल नष्ट कर दिये । प्रजा सब भय के कारण भाग गई । मेरा पिता उससे लड़ाई नहीं कर सकता और अजमेर से अभी तक सहायता-के लिये कोई भी नहीं आया । पिताजी ने मुझे अच-लगढ़ भेज दिया है कि मैं शत्रुओं के हाथ न पड़ जाऊँ । यद्यपि इस प्रकार का शत्रु व्यवहार अनुचित समझा जाता है तथापि ऐसा समय आ गया है कि राजमारी लाज को एक ओर रक्खूं । मैं तो आपकी दासी हूँ । आप जान सकते हैं कि मैं

❀ कमलावती पृथ्वीराज की माता का नाम था, इससे ज्ञात होता है कि पहिले समय में किसी को पत्र लिखते थे तो उसकी माता का नाम भी लिखते थे जैसे यहां कमलावती के वीर पुत्र लिखा है ।

इस समय कैसी आपत्ति-ग्रस्त हूँ । इसलिये आप मुझे अपनी लाग जानते हो, तो यदि दिल्ली भोजन करो तो अचलगढ़ में आकर जलपान करो । यदि अवसर पर न पहुँच सके तो पीछे से फिर क्या हो सकेगा ।

भवदीय प्रिया—

अच्छन कुमारी ।

पत्र को सुनकर सब चित्र की नांई बिलकुल सुन्न हो गये । फिर पृथ्वीराज ने कहा—"वीरो ! अब सोच विचार का समय नहीं है, स्त्री की सहायता को न जाना अति कायरता का काम होगा । मैं चन्द्र और रामराव को लेकर अचलगढ़ जाता हूं, तुम जाकर अजमेर की रक्षा करो । हमारे पास सेना बहुत है, म्लेच्छों से भले प्रकार युद्ध कर सकेंगे । बाकी कुछ सेना दिल्ली में ही रहने दो कि वह पाँचाल ही की हद पर मुकाबिला कर सके । जब तक तुम अजमेर पहुंचोगे मैं भी यदि ईश्वर ने चाहा तो अच्छन को लेकर आ जाऊँगा ।

सायंकाल का समय था । सूर्यदेव अपनी पीली लाल किरणों से तमाम आकाश भर को सुशोभित कर रहे थे । पक्षी-गण झुण्ड के झुण्ड ईश्वर की प्रार्थना के गीत गाते हुये बसेरा लेने को जा रहे थे । बस यह एक ऐसा समय था जिसमें उदासी से उदासी को भी एक बेर तो अवश्य ही लहर आ जाय । ऐसे ही समय राजकुमारी का मन बड़ी देर तक इधर उधर इन रमणीक स्थानों में भ्रमण करता रहा, कि इतने में अब सूर्यदेव ने तो अपना मुख ओट में कर लिया और चन्द्रदेव ने

आकर उस स्थल को और भी रमणीक कर दिया। मैदान, पहाड़, झरने आदि सब साफ २ बड़े सुन्दर लगते थे कि इतने में आबू के अग्निकुण्ड की ओर से तीन सवार किले की ओर आते दिखाई दिये।

वह सीधे किले के फाटक पर पहुँचे, उन्हें देखकर सब अति प्रसन्न हुए, क्योंकि यह वही लोग थे जिनके बुलाने को आदमी भेजा गया था। सवार घोड़ों से उतरे और दास दासियों ने चारों ओर से आकर उन्हें घेर लिया। अच्छनकुमारी को यह पहला ही अवसर था कि उसने अपने प्राणाधार पति का दर्शन किया।

पृथ्वीराज ने पूछा—"तुम्हारी बाई कहाँ हैं?" दासियों ने कहा—"वे ऊपर बैठी हैं, आप चले जाइये।"

जब राज कुमारी ने देखा कि राजकुमार ऊपर ही आ रहे हैं, तो वह स्वयं नीचे उतरी और दासियों को आज्ञा दी कि राजकुमार के स्नान के लिये जल लावें। तुरन्त ही जलादि आ गया और राजकुमार और दोनों मित्रों ने स्नान करके भोजन किये। अब दासियाँ पृथ्वीराज को अच्छन के पास ले आईं, वह लाज के मारे चुप होकर बैठ गई और सहेलियों के कहने पर भी वैसे ही बैठी रही। अन्त को सहेलियों ने कहा—"महाराज! हम जाती हैं। आप बाईजी से बात चीत करें।" उनके चले जाने पर पृथ्वीराज ने कहा—"जिस समय आप का पत्र पहुँचा, उसी समय मैं वहाँ से चल दिया।" अब तो अच्छन को उत्तर देना आवश्यक हुआ। उसने मुसकरा कर कहा—"आप ने बड़ी दया की, आपको राह में बड़ा कष्ट हुआ होगा जिसका कारण केवल मैं आप

दासी हूँ।" राजकुमार बोला—"तुम्हें देखकर मेरी सब
बट जाती रही।" इसके बाद और बहुत सी बातें होतीं
। जिस समय पृथ्वीराज अचलगढ़ में था उसी समय
ावती पर आक्रमण किया गया। खूब ही तलवार चली।
र बड़ा बली और वीर था। एक कवि के जिस का नाम
ाय था उसकी प्रशंसा में एक दोहा कहा था जो यह था—

ध्रुव चाले मेहा डिगे, और गैल गिरनार।
रण पीछे काहं फिरे, शूरवीर परमार॥

रात को सब सो रहे, सबेरा होते ही अच्छनकुमारी
त्ती दो सखियों सहित घोड़ों पर सवार हुई तीनों क्षत्री भी
पने अपने घोड़ों पर चढ़े और फिर ये सबके सब अजमेर
ो ओर चल दिये और वहाँ पहुँच कर अच्छन को सहेलियों
हित महल में प्रवेश कराया।

अब पृथ्वीराज ने अपनी सेना को ठीक करना आरम्भ
या और फिर शहाबुद्दीन से लड़ाई का डंका बजा। तला-
ी के मैदान में खूब लोहा बजा जिसमें पृथ्वीराज की ही जय
और शहाबुद्दीन को पराजित होना पड़ा। परन्तु पृथ्वीराज
एक भूल की कि एक ऐसे बलवान् शत्रु पर अधिकार पाकर
जीता छोड़ दिया।

सोमेश्वर चन्द्रावती में भीम के हाथ से मारा गया था
लिये पृथ्वीराज का राजतिलक कर दिया गया और राज-
हित ने उसके संग अच्छन का विवाह भी करा दिया।

अच्छनकुमारी राज काज को भली-भांति समझ सकती

थी। पृथ्वीराज सदा उसकी सम्मति लेकर काम करता था। अच्छनकुमारी में एक यह बड़ा भारी गुण था कि वह राज के ऊँच नीच से परिचित रहती थी। भला कोई ऐसा काम हो तो जाय जिसकी उसे खबर न मिले ?

कुछ दिनों पीछे पृथ्वीराज ने दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया। उस समय में भारतखण्ड में उससे ज्यादा वीर राजा कोई नहीं था। शहाबुद्दीन हिन्दुस्तान को लेना चाहता था, परन्तु अवसर न पाता था। वह कई बार पराजित हुआ परन्तु धैर्य के सङ्ग अवसर की बाट देखता रहा इधर तो पृथ्वीराज अपने बल के मद में चूर था उधर कन्नौज नरेश संजोगिन के स्वयंवर में पराजित होने के कारण उसका शत्रु बन गया। स्वयंवर की लड़ाई में छटे छटे सरदार मारे गये केवल दो चार शेष रहे थे। सन् ११९३ ई० में शहाबुद्दीन फिर चढ़ आया। पहिली लड़ाई में उसे फिर पराजित होना पड़ा। राजपूतों ने जाना कि अब वह मुकाबिले को न आवेगा। उनकी कुछ तो सेना दिल्ली चली आई और कुछ वीर जय मनाते रहे। एक सरदार विजयसिंहका शहाबुद्दीन से मेल था। जब सब लोग खुशी मना रहे थे वह अपने राजपूतों को लेकर यवनों से जा मिला। इस विश्वासघाती ने शहाबुद्दीन को फिर मुकाबिले के लिये तैयार किया। आक्रमण किया गया। बहुत से आदमी मारे गये। परन्तु हिन्दुओं का समय आ चुका था, उनके प्रारब्ध में तो गुलामी बदी थी, राज्य कौन करता। विजयसिंह की मक्कारी से पृथ्वीराज जख्मी होकर गिरा और बेहोशी में पकड़ा गया और शहाबुद्दीन के हाथ से मारा गया। जब आपत्ति आती है तो एक ओर से नहीं आती किन्तु चारों ओर जिधर देखो बस घोर आपत्ति ही

आपत्ति दीख पड़ती है। उधर तो पृथ्वीराज रण को गया इधर ऊखावती पृथ्वीराज की पुत्री का स्वास्थ्य बिगड़ा। दुखिया रानी उसकी खाट से बराबर लगी बैठी रही। जब उसने डेरे के बाहर बड़ा कोलाहल सुना तो बड़ी चकित हुई। इतने में दो क्षत्री हाँपते २ आये और कहने लगे—"भागो २ अपना २ धर्म बचालो। यवनों की जय हुई वे राजभवन लूटने को आ रहे हैं।" रानी बोली—"महाराज कहाँ हैं?" उत्तर दिया—"राजा को हमने रणभूमि में पड़े देखा था।" यह खबर सुन कर ऊखावती घबरा गई और पूछने लगी—"समर कल्याणादि कहाँ हैं?" सिपाहियों ने कहा—"वे सब मारे गये।" यह सुनना था कि वह चिल्ला उठी—"नाथ आप अग्नि में आहुत हो गये।" यह कह कर वह बेसुध हो गई और फिर न चेती। रानी यही बेचारी धाड़ मार २ कर रो रही है। सिपाही कहने लगे—"रानी जी जल्दी नगर को चलिये शत्रु लोग चले आ रहे हैं। कहीं ऐसा न हो वे हमारा धर्म भी नाश कर दें।" यह सुन कर रानी को होश आया। उसने सुन्दर वस्त्राभूषण उतार दिये, सिर की जटायें खोल लीं और जैसे कोई बावली बातें करती है वैसे बकने लगी। मुझे अब क्या चिन्ता है, किसका डर है, जिसका था वह उसके संग गया। सब धन दौलत लुट गई। अब क्या रहा है जिसको मैं भागकर बचाऊँ। बजो जल्दी चिता बनाओ। यवन, म्लेच्छ मेरा क्या करेंगे। जिसे अपनी जान प्यारी हो वह भाग जाय। मैं तो न भागूंगी। दिल्लीपति मर गया! चाण्डाल शहाबुद्दीन ने मार डाला। महाराज ने उसे छोड़ दिया था। दुष्ट को तनिक भी दया न आई। चलो जल्दी करो। राजा का शरीर अभी ठण्ढा नहीं हुआ होगा। चिता बनाओ मैं राजा के संग स्वर्ग जाऊँगी।"

यह बातें सुन कर लोगों ने चिता बना दी और ऊषावती का मृतक शरीर उस पर रख दिया। रानी भी चन्दन लगा गले में श्वेत पुष्पों का हार डाल चिता की परिक्रमा कर बिलकुल तैयार हो रही थी कि एक सम्बन्धी घोड़ा दौड़ाता हुआ उधर आया। यह पृथ्वीराज का सेनापति था। वह तुरन्त ही रानी के पांव से लिपट गया। अच्छन बोली—"बलदेव क्या कहते हो?" वह बोला—"महाराज ने आपको संदेशा भेजा है।" रानी बड़ी चकित हुई। "हाय वह संदेशा कैसा?" दिल्ली का राजा तो रण में मारा गया, तुम किसका संदेशा लाये हो?" उत्तर दिया—"देवी! राजा मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। परन्तु अब···" रानी बोली—"बस परन्तु अब से क्या मतलब है? जल्दी कहो?" वह बोला—"देवी राजा कैद में है। वह म्लेच्छों के हाथ पड़ गया।" रानी की आँखें बिलकुल रक्तवर्ण हो गईं। दिल्लीपति का क्या संदेशा है? यह सँदेशा तुम सेनापति होकर सुनाने आये हो! तुम सच्चे क्षत्री हो, तुम्हारी माता धन्य है कि राजा कैद में है और तुम इस प्रकार संदेशा सुनाने आये हो? और सो भी मुझी को संदेशा? दासियों, देखो यह क्षत्री का पुत्र है और दिल्लीपति का दाहिना हाथ है। राजा का संग छोड़ धर्म से मुख मोड़ कर मुझे संदेशा सुनाने आया है। आज से क्षत्री धर्म नष्ट हो गया। राजभक्ति, देशभक्ति, धर्मभक्ति सब जाती रही। अब तो संदेशा सुनाने वाले रह गये हैं। धन्य है! वीर क्षत्री तेरी जबान धन्य है! तेरा घोड़ा धन्य है और धन्य है तेरी तलवार! आहा देखो तो आप मैदान से आ रहे हैं। अरे क्या तेरी स्त्री तुझ से प्रसन्न होगी? क्या तेरी माता की छाती न फटेगी। अरे वीर क्या तुझे लाज भी नहीं रही [illegible] सामने से [illegible] मुझे मुंह मत

दिया मैं दिल्लीपति की सच्ची प्रजा हूँ मैं राजपरायण होना चाहती हूँ तुम सिंह से शृगाल बन गये । रण से भाग आये और राजा की सती स्त्री को संदेशा सुनाते हो । दुष्ट तूने किसी क्षत्राणी का दूध नहीं पिया । तुझ को अपने देश की स्वतन्त्रता प्यारी न थी । तुम्हीं जैसे लोग तो कुल, देश, राज के कलंक होते हैं । मेरे सामने से चला जा । मैं अब भी क्षत्री की पुत्री हूं चाहें सूर्य जरा सी देर में छिन्न भिन्न होकर भूमि पर गिर पड़े परन्तु मैं अपने धर्म से न गिरूंगी । मैं राजराजेश्वरी हूँ जा भाग जा।" और फिर तुरन्त ही लोगों से कहा—"इससे तलवार छीन लो।" और जब तलवार उसके हाथ में आ गई वह छलांग मार बलदेव के घोड़े पर आ रही। उस समय उसकी शोभा देखने योग्य थी। हाथ में नंगी तलवार। केश खुले हुए, माथे पर चन्दन लगा हुआ और निडर घोड़े पर बैठी है। उसने सेवकों से कहा—"प्रजा का धर्म है राजा की रक्षा करें । मैं अकेली शत्रुओं से लड़ कर उसे छुड़ा लाऊंगी। यह सब शरीर राजा का है और राजा के काम में ही कट कर गिरेगा।" राजपूतों को उसकी बात सुन कर जोश आ गया—"माता जब तक जान में जान है तब तक लड़ेंगे मरेंगे कटेंगे काटेंगे।" बस फिर क्या था रानी घोड़े को एड़ लगा यह जा वह जा शत्रुओं की फौज में घुस पड़ी। राजपूत भी उसके संग थे । मुसलमान लोग राजभवन लूटने को आ रहे थे। रानी ने जाकर महाप्रलय मचा दी जिधर जो पड़ जाय गाजर मूली ही कर दे । मुसलमान डरे हाय कौन बहादुर औरत है जो इस तरह हमारी फौज काट रही है परन्तु एक के लिये दो बहुत होते हैं । नहिं यहाँ तो कुछ गिनती नहीं । तब मुसलमानों ने उसे घेर लिया और सब ने उस पर तीर

चलाना चाहा । परन्तु वह बच गई । फिर एक तीर आया जिससे रानी परलोक सिधारी । मुसलमानों ने बहुत चाहा कि इस रानी का शरीर मिल जाय परन्तु वीर राजपूतों ने उसे चिता पर पहुँचा दिया और स्वयं लड़ कर प्राण दिये।

जब चिता में आग दी गई तो फिर बहुत सी स्त्रियाँ परिक्रमा कर २ चिता में बैठ गईं और सायंकाल तक बहुत सी स्त्रियाँ इस प्रकार सती हो गईं । उधर राजा को कैद कर गोर पहुँचाया गया । भारत का राज छिन गया शहाबुद्दीन राजा बन बैठा । हिन्दुओं का धर्म नष्ट भ्रष्ट हुआ । एक को दूसरे से प्रीत न रही धर्मात्मा तो एक भी नहीं संदेशा के सुनाने वाले रह गये जो बात बात में भाइयों के हृदय को बेधते हैं । परन्तु ऐसा एक भी नहीं जो उन्हें धर्मभक्ति राज-भक्ति देशभक्ति की शिक्षा दे । हा दैव ! क्या भारत की और उसकी संतान की सदा यही दशा रहेगी ?

अच्छनकुमारी ! तू धन्य थी । सती तेरा सत्त भाव धन्य था । माता ! तेरा मातृभाव सच्चा था अय देवी ! तू मर गई । तेरी सी शुभ मृत्यु हर किसी अच्छे स्त्री पुरुष को मिले और ईश्वर करे पाठकों के हृदय में तेरा वृत्तान्त पढ़कर देश-भक्ति का अंकुर उत्पन्न हो ।

इति शुभम् ।

वर्त्तमान स्त्रियों जागो

सोने का अब समय नहीं है ।

॥ ओ३म् ॥

भारतवर्ष की
वीर और विदुषी स्त्रियाँ
द्वितीय भाग

—※—

सरस्वती

सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री थी । इसकी माता का नाम सावित्री था । यह अत्यन्त सुन्दरी और गुणवती थी। जिस मनुष्य को वैदिक ऋषियों ने सब से पहिले श्रुति की शिक्षा दी थी, यह ब्रह्मा था । उसने उस विद्या की शिक्षा अपनी सन्तान को दी। सनक, सनन्दन, सनत्कुमारादि इसके पुत्र थे। इन पुत्रों के साथ में ब्रह्मा ने सरस्वती को भी वेदों की शिक्षा दी। जहाँ ऋषि अनेक विद्या से गुणयुक्त होकर अपनी आयु को पूर्णानन्द में व्यतीत करने लगे वहां सरस्वती ने भी अपनी तीव्र और विलक्षण बुद्धि के कारण वह विद्या अध्ययन की कि जो वास्तव में उसकी आयु को पूर्णानन्द करने में किसी प्रकार कम न थी और सरस्वती साक्षात् अर्थात् सर्व विद्या की देवी कहलाने लगी । यह गान-विद्या में बड़ी निपुण थी, यह हाथ में दोतारा लिये हुए ईश्वर के भक्तियुक्त प्रेम में

मग्न होकर ऐसे राग गाया करती थी, जिनको सुनकर मनुष्य मात्र ही नहीं वरन् वनस्पत्यादि भी विद्या की निपुणता का प्रमाण देते थे । इसने अपनी तीव्र बुद्धि से संसार में अनेक विद्याओं का प्रचार किया । "संगीतशास्त्र" जिससे छन्दादिक के पठन-पाठन और गाने की रीतियाँ ज्ञात होती हैं इसी ही देवी की स्वाभाविक विलक्षण बुद्धि के विचार का फल है । निःसंदेह श्रुति पहिले से थी वरन् संस्कृत की वह भाषा जो पौराण सूत्रादि में पहले ब्राह्मणों में मिलती है उसको करने वाली और उसके नियमों को बनाने वाली यही देवी थी सभा में वार्तालाप की प्रचारक यही देवी थी, गणित विद्या को भी इसी सर्व गुणयुक्त देवी के तीक्ष्ण विचार और परिश्रम रूपी वृक्ष का फल बताते हैं । मूल अक्षर और व्यंजनादि इसी ने बनाये थे तात्पर्य यह है कि इस देवी के सर्वविद्यायुक्त आचरणों की संसार में इतनी प्रतिष्ठा होने लगी कि उसका नाम ही "सरस्वती" सब विद्या का आधार बना गया ।

सरस्वती अत्यंत प्रतिष्ठित और पूजनीय देवी थी । उस समय जब प्रायः ऋषि संतान सुयोग्य और सुशिक्षित हुआ करते थे । उसके सुयोग्य कोई वर नहीं मिला । उसने अपनी आयु पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य अवस्था में व्यतीत कर दी और सदैव विद्याध्ययन और सुनीति युक्त शिक्षाओं को अपने जीवन के आन्दोलन का मुख्य कारण समझा था ।

ब्रह्मा से लेकर जैमिनि के समय तक इस प्रतिष्ठित देवी के प्रकाशित और सुशिक्षित की हुई विद्या का प्रचार इस देश में होता रहा । "सरस्वती" के तात्पर्य को सब लोग भली भाँति समझते थे, इसके पठन-पाठन के नियत किये हुए नियमों को

उल्लंघन नहीं करते थे। परन्तु आज कुछ ऐसी दशा हो गई है कि हम वास्तविक आशय को भूलकर उस पूजनीय देवी की दर्शनार्थ प्रतिष्ठा तो अवश्य करते हैं किन्तु उसके आशय नियमों का कदापि पालन नहीं करते।

दिवाली का दिन इसी गुणवती देवी के स्मरण करने का दिन था, उस दिन सरस्वती की पूजा में बालकों को विद्या का आरम्भ कराया जाता था, लोग कार्य्य प्रबन्ध के लेखा जोखा का नवीन हिसाब खोलते थे उस समय से विद्या सीखने की दृढ़ प्रतिज्ञा करते थे और इसी भाँति उसकी वास्तविक प्रतिष्ठा करते हुए अपने आचरणों को सुधारते थे बड़े खेद का विषय है कि जो दिन विद्या के गूढ़ आशय पर व्याख्या करने के लिये नियत था, अब वह व्यर्थ घूमने फिरने और मिठाइयाँ मोल लेने का दिन है और जिस रात को लोग जाकर प्रशंसनीय देवी के स्मरणार्थ विद्या सम्बन्धी शास्त्रार्थ करते थे वह रात अब जुवारियों की रात कही जाती है, उस रात को पाँसा जगाया जाता है, जुवे में सहस्रों के वारे न्यारे होते हैं। कितनों के घर उजड़ते हैं, कितनी बेचारी स्त्रियों के नाक की नथ तक उतार कर दाँव पर रक्खी जाती है। कितने ही बेचारे बच्चों की रोटियाँ उस रात को छीनी जाती हैं। बड़े बड़े घरों में चोरियाँ होती हैं, धोखे से काम लिया जाता है। पाठक ! उस समय पर समस्त हिन्दुओं में इतना उत्साह होता है। कि उस दिन जागरण करके सरस्वती का स्मरण और पूजन किया जाता है।

हमारी दशा भी कुछ और ही हो गई है जो दिन हमारे विद्यारंभ और उन्नति का कहा जाता है, और जिस दिन पवित्र माता के नाम से हम अपनी उन्नति करने का उत्साह करते

थे, अब वही दिन हमारे नाश विनाश कर देने और अविद्यादि दोष फैलाने का दिन हो गया। यदि सरस्वती इन कार्यों को अवलोकन करती जो उसके स्मरणार्थ किये जाते हैं तो उसको कितना दुःख होता। हम वास्तव में ऐसे ना समझ हो गये हैं कि किसी कार्य के मुख्य आशय पर कदापि ध्यान नहीं देते और न उसके समझने का यथावत् प्रयत्न करते हैं। हमारे जातीय नियम और देश प्रचलित रीतियाँ इसकी अपेक्षा कि वह हमको सुख आनन्द और लाभ का सम्पादक बनावें, हमको उन्नति के द्वार तक पहुँचावें, नित्य प्रति हमारे दुःख और शोक का कारण हो रही है। और जो हमारे जाति विशेष के सुधारने और दृढ़ करने के यन्त्र थे अब उन्हीं से हमारी जाति के नष्ट करने का यथावत् प्रयत्न किया जाता है।

सरस्वती के नाम एक नदी भी प्रसिद्ध है। किसी समय में उसके किनारे वेद विद्या के सिखाने का आश्रम रहा होगा और जहां ऋषि मुनि एकत्रिक होकर मीठे स्वर से वेदध्वनि किया करते थे और इस वेदमतिस्थ आश्रम से निकलकर देश के प्रत्येक भागों में वेद मन्त्रों का उपदेश करते थे। वास्तव में वह एक पवित्र स्थान था, जहाँ से स्वच्छ विचार और मनुष्यों के कर्म धर्म के सुधारने उनको पवित्र और स्वच्छ विचारों पर स्थिर रखने का प्रबन्ध किया जाता था। अब आज दिन उसी नदी की इस भांति प्रतिष्ठा होती है कि केवल सरस्वती में स्नान करना ही मोक्ष का एक मुख्य कारण समझा जाता है। जो तीर्थ आश्रम हमारे पठन-पाठन और उन्नति के शिखर पर पहुँचाने के महान् गौरवकारी स्थान माने जाते थे अब हमारे दुर्भाग्यवश वही अनेक दोषोपाधियों के मुख्य स्थान बन गये। न तो कहीं उपदेश होता है, न

कहीं कथा होती है, न पाठशालायें हैं, न विद्यालय । यदि हमारे स्वदेश स्थित भ्रातृगण सरस्वती के स्नान के वास्तविक महात्म्य को समझते तो दृढ़ता से आशा थी कि वे शीघ्र ही पवित्र आत्मा होकर परम पद को प्राप्त कर लेते ।

चाहे जो कुछ हो उस माता का नाम अब भी हमको सचाई पर चलने की राह बतला रहा है । और आशा की जाती है कि आर्य-संतान किसी समय अपनी माता सरस्वती के सच्चे मातृ भक्तियुत पुत्र कहलाने के योग्य हो जायँगे । और उनके नाम की यथावत् प्रतिष्ठा और पूजा करते हुए समय को फेर लावेंगे । जब चारों ओर वेदपाठ की सुरीली ध्वनि सुनाई देगी, हर जगह विद्या का प्रचार होगा और हम अपने घरों में सरस्वती की जगह अपनी माता और बहिनों को उन आवश्यक नियमों को पालन करते हुए देखेंगे । उनके गोद के खेलते हुये बच्चे जाति और देश की उन्नति के ऊँचे शिखर पर पहुंचाते हुए भारत को वास्तव में स्वर्गधाम बनावेंगे ।

सरस्वती देवी ! तू धन्य है । यदि हम तेरे नाम की प्रतिष्ठा करना जानते और स्वच्छचित्त होकर तेरी भक्ति करते और तेरी पूजा करते तो भारत को यह दिन कदापि न देखना पड़ता । ईश्वर करे तेरा नाम हमारे भूले हुए भाइयों को सचाई की राह पर लाये । तेरी ऐसी सुबुद्धि युक्त मातायें हमारे देश में उत्पन्न हों और तेरी भाँति हमको सचाई और सत्य विद्या की शिक्षा दें । देवी ! तू धन्य थी। तेरा पराक्रम, तेरा उत्साह धन्य था। यह सब दुःख हमको केवल तेरे न होने के कारण प्राप्त हो रहे हैं ।

———

पन्ना

सौ वर्ष के लगभग व्यतीत होते हैं जब कि होल्कर की सेना राजपूताने में बड़ी ऊधम मचा रही थी, साँगानेर के निकट ग्राम में एक मध्यम श्रेणी का कछवाहा रहता था। कछवाहे राजपूतों में दुर्बल और आलसी समझे जाते हैं और जैसिंह सवाई के समय को छोड़कर उन्होंने सचमुच कोई प्रशंसनीय कार्य भी नहीं किया था। परन्तु फिर भी वह राजपूत हैं और इस ग्राम के कछवाहे को जिसका नाम दलथम्भनसिंह था अपना बल, पौरुष और साहस पर बड़ा अभिमान था और आसपास के राजपूत उसको अपना सरदार समझते थे। उसकी स्त्री पन्ना बड़ी सुकुमारी, अधीनचित्त और कोमल हृदय की स्त्री थी। दलथम्भनसिंह उसको कभी २ ताना देता था, देखना तुमको कहीं हवा न उड़ा ले जाय।

एक दिन राजपूत अपने एक मित्र के साथ बैठा हुआ अफीम घोल रहा था, पन्ना अपने पाँच वर्ष के बच्चे को गोद में लेकर उसके पास से निकली उसके सौन्दर्य्य को देखकर उसका साथी बड़े आश्चर्य से उसको शिर से पाँव तक देखने लगा। दलथम्भनसिंह ने हँस कर कहा—"क्या देखते हो, इसमें यदि राजपूत स्त्रियों का सा साहस होता तो संसार में एक ही स्त्री थी।" परन्तु सुशील, गुणवती और लज्जावती होने के कारण यह मुझे प्राण से भी प्यारी है।" पन्ना अपने पति की बातों को सुनकर मुसकराती हुई चली गई। राजपूत के साथी ने कहा—"तुम जानते नहीं हो, इसकी चेष्टा से प्रतीत होता है कि यह बड़ी साहसी और वीर स्त्री है।

धीरता। वाह वीरता की तो इस में छुताई तक नहीं है, पत्ते का खड़कना सुनकर इसका जी धड़कने लगता है।

परन्तु तुमने मुझ से किसी समय कहा था कि वह गोली चलाना जानती है।

हां यह सच है, यह केवल उसका स्वभाव है, इसका बाप बड़ा सिपाही था परन्तु अब तो बहुत दिनों से उसने बन्दूक को हाथ तक नहीं लगाया, वह जन्तुओं का शब्द सुनकर काँप उठती है, वह कीड़े मकोड़ों की जान लेना भी हत्या समझती है।

परन्तु क्या अवसर पड़ने पर भी वह आगा पीछा कर सकेगी ? दलथम्भनसिंह हँसकर कहने लगा—"वाह, तुमने अवसर की एक ही कही; भय के समय इसकी घिग्घी बंध जाती है। इतनी लज्जावती है कि किसी स्त्री से प्रायः बात चीत नहीं करती। परन्तु कुछ परवाह नहीं, मैं प्रत्येक समय उसके साथ रहकर उसकी आशा पूर्ण करता हूं।" साथी ने कहा—"तुम नहीं जानते ऐसे स्वभाव वाले अवसर पड़ने पर बड़ा काम करते हैं, जो हम तुम से नहीं हो सकता।

इस बातचीत होने के दो दिन पीछे ऐसा समय आया कि जब पन्ना घर के काम काज में लगी हुई थी, उसका पांच वर्ष का बालक अवसर पाकर खेलने के लिये घर से बाहर निकला और अकेले घूमते फिरते पहाड़ी मार्ग में राह भूल गया। घंटे दो घंटे के पीछे माता को अपने बालक के खोजने की सूचना मिली। मेरा भैया! कहती हुई घर से बाहर आई। दलथम्भन से पूछा—"बच्चा कहाँ है ?" वह क्या जानता था। माता को बड़ा दुःख हुआ। दलथम्भनसिंह इसको एक सामान्य बात समझे था। वह बराबर हँसता रहा। वह क्या

जानता था, लड़का गुम होगया है। इसने समझा कहीं खेल रहा होगा, थोड़ी देर में आजावेगा। यह अपनी स्त्री के स्वभाव पर प्रायः हँसी करता था। साथी से कहा—"देखो यह वह स्त्री है जिसके विषय में तुम कहते हो, अवसर पड़ने पर वीरता दिखलावेगी। पहरों होगये बच्चे का कहीं पता ठिकाना नहीं।" अब तो कछवाहे का हृदय काँप उठा, कलेजा धड़कने लगा, इधर उधर खोज लगाने के लिये नौकर चाकर छूट पड़े। दलथम्भनसिंह उसका साथी और पन्ना ढूंढते २ पहाड़ी के किनारे जा पहुंचे। एक चरवाहे ने कहा—"तीन पहर हुये एक छोटे बालक को मैंने देखा था।" खोजने वाले उसका नाम ले-ले कर पुकारने लगे, परन्तु सिवाय चिल्लाने के कुछ हाथ न आया। पांव के चिन्ह रेत और मिट्टी पर बने थे। उस समय पाँव के चिन्ह को देखकर खोज लगाने की, सुगम रीति थी। यह सब उसी चिन्ह को देखते-देखते आगे चले। कुछ २ विश्वास हो गया था कि अब छोटे बच्चे का मिलना कठिन है। क्या जाने किसी बनचर जन्तु ने उसे मार डाला हो।

बात यह हुई, बालक राह भूलकर इधर उधर भटकता रहा, बहुत समय व्यतीत हो जाने पर वह भूख प्यास से व्याकुल होकर रो पीट कर एक वृक्ष के नीचे अचेत पड़कर सो रहा था और यही कारण था कि उसने उसकी पुकार को नहीं सुना।

जब तीनों आदमी उस वृक्ष के निकट पहुंचे, उनकी दृष्टि बालक पर पड़ी। माता का दिल खुशी से उछल पड़ा—"भैया वह सो रहा है" और वह सब उसी ओर चले। पृथ्वी ऊँची नीची थी, पांव फिसलने का भय था। बालक सिर के बल हाथ रखकर सो रहा था। उसका मुख लम्बे

बालों में कुछ ढक गया था, परन्तु चेष्टा से प्रकट था कि वह जीता-जागता है। अब माता को धीरज हो गया कि मेरा नन्हा अभी जीता है। माता उधर झपटी और चाहती थी कि बच्चे को गोद में उठाले, परन्तु दो पग भी न गई होगी कि उसका जी सन्न हो गया। पास ही एक बहुत बड़ा विषधर सर्प बैठा हुआ बालक पर चोट करने की घात में लग रहा था। वह बड़ा भयंकर था। उसकी चमकती हुई आंखों को देखकर डर लगता था। वह चाहता ही था कि बच्चे का काम पूरा करें और माता की आशा निष्फल हो जाय। दलथम्भन-सिंह के कंधे पर पुराने ढब की बन्दूक थी। उसने उसको उठाया। उसकी स्त्री ने घबराकर कहा—ईश्वर के लिये जल्दी गोली चलाओ, भैया बच जाय।"

परन्तु कहने और करने में बड़ी विशेषता होती है। दलथम्भनसिंह कुछ आगा पीछा करने लगा, क्योंकि साँप के मारने से बच्चे के मरने का भय था। पन्ना अपने पति के आगे पीछे को समझ गई। क्षण भर के पीछे माता की गोद बच्चे से सदैव के लिये खाली हो जाती। ग्रामवासिनी कोमलाँगी राजपूतनी इस काम के लिये कटिबद्ध हो गई। पती को गोली चलाने में शंका थी। स्त्री के हाथ पांव कांप रहे थे। राजपूत साथी आश्चर्य्यित था, स्त्री की दृष्टि उसकी ओर गई। दूसरी बार सर्प ने फण उठाया और उसी क्षण पन्ना ने दुष्ट को बन्दूक का निशाना बनाया और बात की बात में साँप का फण छिन्न भिन्न होगया। उस समय माता के प्यार करने वाले हाथों ने बच्चे को बड़े वेग से खींच कर छाती से चिपटा लिया।

पन्ना का लक्ष्य (निशाना) ठीक बैठा। बन्दूक का शब्द

सुनकर साँप भी सन्न से निकल गया । इन सबको बड़ा हर्ष हुआ । पन्ना बार २ अपने बच्चे को चूम २ कर छाती से लगाती थी । वह बन्दूक का शब्द सुनकर चौंक पड़ा और फिर व्याकुल हो गया, परन्तु थोड़ी देर पीछे आँख खोलदी । सब के जी में जी आया, वह भी अपने माता पिता को पाकर न्यिानदत हुआ । राजपूत साथी ने दलथम्भनसिंह की ओर देखा और उसने उसी क्षण स्वीकार किया कि मैं जानता नहीं था, निस्संदेह मेरी पत्नी बड़ी साहसी है वह सच्ची राजपूतनी है, जो क्षणमात्र में अवसर को देखकर समयानुसार काम कर सकती है । यह स्वभाव वीर पुरुषों में भी नहीं पाये जाते । और फिर उसने कभी अपनी स्त्री को ऐसी बातें नहीं कही जो राजपूत स्त्रियों के अयोग्य हों।

यदि हमारे स्वदेशवासी स्त्रियों को विद्योपार्जन करने की सामग्री एक त्रित करदें तो वह देखेंगे कि जिस धार्मिक और देशोपकारी कार्य को वह वर्षों में करना चाहते हैं स्त्रियाँ उसे महीनों में पूरा कर दिखायेंगी ।

सती सावित्री

ऊंचा तरुवर गगन फल, विरला पन्ची खाय ।
इस फल को तो वह भखे, जो जीवत ही मरजाय ।१।
जब लग आस गरीब की निर्भय मथा न जाय ।
काया माया मन तजे, चौड़े रहै बजाय ॥२॥

मरने का भय त्यागकर, सत्त चिता चढ़ देख ।
पिव दर्शन तब मिलैं जब मन रहै न रेख ॥३॥
सती चिता पर बैठकर बोले शब्द गँभीर ।
हमको तो सांई मिलैं, जब जर जाय शरीर ॥४॥
सती चिता पर बैठकर, चहुँ दिश आग लगाय ।
यह तन मन है पीव का, पीव संग जर जाय ॥५॥
सती चिता पर बैठकर, बोली बचन संभार ।
जीव हा ! मर रहो, तब पावो भरतार ॥६॥
सती चिता पर बैठकर, तजै जगत की आस ।
आंखों बिच पिउ रमिरहा, क्यों वह होय उदास ॥७॥
सती चिता पर बैठकर, जीवन मृतक होय ।
खरी कसौटी प्रेम की, झूठा टिके न कोय ॥८॥
आये थे सब हटिगये सती, न छाड़ै संग ।
यह तो पति संग यों जरै, जैसे दीप पतंग ॥९॥
प्रेम भाव मन छाड़र्या उड़ २ लागे अङ्ग ।
अग्नि जोति की मध्य में चमके पिउ का रंग ॥१०॥
मन मनसा ममता गई, अहन गई सब छूट ।
गगन मँडल में घर किया काल रहा सिर कूट ॥११॥
जा मरने से जग डरै मोहि सदा आनन्द ।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द ॥१२॥

मरते मरते जग मरे, मरना मरम न कोय।
दास कबीरा यों मरे, फिर नहिं जीना होय ॥१३॥
जीते जीते सब मुये, जीता रहा न कोय।
दास कबीरा यों जीये काल न पावे सोय ॥१४॥
सती प्रेम बिच हैं फँसी मदमाती पिव रङ्ग।
सहजैं छोड़े देह को, ज्यों कैंचुली भुजंग ॥१५॥

सावित्री महर्षि ब्रह्मा की स्त्री थी, यह पूज्यनीय परम पवि शुद्ध आत्मा और सरल स्वभाव वाली थी, यह केवल कर्म ध और घर गृहस्थ के कामों को ही नहीं जानती थी वरन् आध्या त्मिक ज्ञान की बहुत अच्छी समझ बूझ रखती थी। इसकी कु से चार पुत्र सनक, सनत्कुमार, सनन्दन और सनातन और ए पुत्री सरस्वती उत्पन्न हुई थी। आज कल की तरह उस सम पठन-पाठन का प्रचार नहीं था, और लोग अक्षर तक न जान थे। न कहीं पुस्तकों का नाम था, न पाठशालों का प्रबन्ध था। लो वेद भगवान के मन्त्रों को सुनकर कंठ कर लेते थे। विद्योपार्ज प्रणाली ब्रह्मा के समय से नियत हुई है इसी कारण वेदों को श्रु कहते हैं। सावित्री ने अपनी संतान की शिक्षा स्वयं की थी सन्ता को सुयोग्य, सुशिक्षित और सुशील बनाने के लिये माता की समझ बूझ को अधिक लाभदायक समझना चाहिये। सावित्री स्व गुणवती थी और इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक विद्या की जानने वाली थी अतएव उसकी पाँचों सन्तान संसार में पाण्डित्ययुक्त और सर्वविद्या निधान होकर उच्च पदवी को प्राप्त हुई और आज दिन भारत भूमि में उनकी कीर्ति की अचल ध्वजा फहराती हुई उनके महान गौरव की साक्षी दे रही है।

सावित्री अपनी सन्तान को साथ रखकर और ऋषि-पत्नियों ा में दूसरों को उनके साथ शिक्षा देती थी और निवृत्ति य पर व्याख्यान देती थी। उसका परिणाम यह हुआ कि सत्संग के प्रभाव से उसकी सन्तान विरक्त हो गई और चारों पुत्रों ने विद्या सीखने के पीछे अपने चित्त को एक मार्गगामी । उनमें से सनत्कुमार आयुर्वेद विद्या का ज्ञाता और पण्डित हुआ है। सरस्वती जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारिणी रह नेक विद्याओं की अधिष्ठात्री हुई। लेख प्रणाली, गणित, ाप, राग विद्या, सितार, वीन, बाँसुरी और मृदंगादि बाजों ार करने वाली यही देवी है।

सावित्री सत्सङ्ग में सदैव कहा करती थी—"मनुष्य को में बालक के समान निर्लेप रहना चाहिये, क्योंकि इस युक्ति वन व्यतीत करने में आत्मसुख प्राप्त होता है और दुःख से रा मिलता है।" उसके उपदेश का प्रभाव हम उसकी संतान ते हैं। यह बात अब तक प्रसिद्ध है कि सनत्कुमारादि ऋषि हैं और सरस्वती का वृत्तान्त आप पर विदित है। चित्र जो आजकल बनाया जाता है उसमें भी उसके बचपन ोलीभाली चेष्टा की कान्ति के दिखलाने का प्रयत्न किया है।

वास्तव में इसी प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिये और र पर्यन्त बालकों की तरह अपने चित्त की वृत्ति को रखना ये। हमको ईश्वर की उपासना और सतसंग की सहायता से ों की अवस्था को प्राप्त करना चाहिये। इसी को परमहंस कहते हैं और यही अहिंसा रूप है। बालक यदि किसी की हानि भी करता है तो लोग उसको अनुचित नहीं

समझते, उसकी बुराई को और लोग नहीं देखते परमहंस एक अबोध बालक है, जिसने बाल्यावस्था की अज्ञानता के अतिरिक्त अपने स्वभाव को स्वयं छिपा रक्खा है और उसके सहारे वह परमगति को प्राप्त कर लेता है। ऐसे अबोध बालक को माया भी अपने जाल में फँसाने में असमर्थ है, उससे सब प्रेम करते हैं सब उसको चाहते हैं। कोई उसको हानि नहीं पहुँचा सकते न कोई उससे घृणा करता है न कोई उसका शत्रु है। उसकी आत्मा पवित्र है और उसका हृदय स्वच्छ है, उसका चित्त वह निर्मल आकाश है, जिसमें राग और द्वेष रूपी घटायें पवित्रता रूपी वायु प्रहार से छिन्न भिन्न हो जाती हैं। उसका स्वभाव शरद ऋतु का स्वच्छ चन्द्र है, जिसकी शीतल छाया चित्त को प्रसन्न और आनन्दित करती है। बालक मुसकराता है, सब खिलखिला कर हँस पड़ते हैं। जिस स्थान में बालक खेलता कूदता रहता है, देखने वाले बड़े प्रसन्न होते हैं। यही स्वभाव साधुओं के हैं और उनमें होना भी आवश्यक है।

चौपाई

बाल रूप सम जग में रहो। बालक बन सब का हितहरो॥
बिचरो जग में बाल समान। स्तुति निन्दा करो न कान॥
भोग वासना सबही त्यागो। बालक सम माता हिय लागो॥
खेल कूद यों लीला ठानी। अन्त मातु के गोद समानी॥
मोक्ष बन्द का भय नहिं ताको। लोक लाज की भीर न वाको॥

धन्य हैं वह प्राणी जिनके ऐसे स्वभाव होते है क्योंकि जीवन मुक्ति का अधिकार ऐसे ही महानुभावों को होता है।

सावित्री घर के काम काज से छुट्टी पाकर अपना समय नीति, धर्म पतिव्रता भाव और ईश्वरीय ज्ञान सिखाने में व्यतीत करती थी। हिन्दुओं के पुराणों में कहीं-कहीं लेख है कि यह धर्मशास्त्रों के संग्रह करने में ब्रह्मा को सहायता देती थी और ऋषि हर बात में उसका परामर्श लेता था।

इस देवी की आत्मा और हृदय इतना स्वच्छ था और इसकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि उस समय भी उसके आचरण के से प्राणी बहुत थे। परन्तु फिर भी यह कभी २ ऋषि से स्त्री-धर्म की बातें पूछती रहती थी और इस उपदेश से अन्य स्त्रियों को भी लाभ पहुंचाया करती थी। सामवेद के गाने में यह अद्वितीय थी। जिस छन्द को यह अधिक प्रेम से गाती ब्रह्मा ने उसे उसके ही नाम से प्रसिद्ध किया। (हम नहीं कह सकते कि यह बात कहाँ तक ठीक है)।

एक दिन सावित्री ने जिस प्रकार अपने पति की स्तुति की थी उसका अनुवाद निम्न लेख से विदित होगा—

स्वामी! तुम से संसार को विद्या प्रकाश मिला है। तुम मन के पूज्य हो, मैं तुमको नमस्कार करती हूं। प्राणपति, तुम मेरे मस्तक के चन्द्रमा, मेरे मन और वाणी के स्वामी हो, मैं तुमको नमस्कार करती हूँ। भगवान! तुम मेरे सहायक हो, जैसे तारागण सूर्य की परक्रमा करते हैं वैसे ही मैं भी तुम्हारी परिक्रमा करती हूं। मैं तुमको नमस्कार करती हूं। प्रियतम! तुम मेरी दृष्टि में आनन्द स्वरूप हो। तुम मेरी समझ, बुद्धि, ज्ञान और भक्ति के आधार हो। मैं तुमको नमस्कार करती हूं। प्राणनाथ! तुम दीन की रक्षा करने वाले, अधीन के सहा-

पक और अज्ञानियों के ज्ञान हो, मैं तुमको नमस्कार करती हूं। दयामय! मैं तुम्हारी स्त्री, दासी और सेविका हूं। अज्ञानवश जो कुछ अपराध हुआ हो क्षमा करो, मैं तुमको नमस्कार करती हूं। दीनबन्धो! यदि मुझको तुम्हारा सहारा न होता, तो मेरी क्या दशा होती। मैं केवल तुम्हारे सहारे भवसागर पार करूँगी। मैं तुमको नमस्कार करती हूं।

सावित्री प्रायः इस प्रकार की स्तुति किया करती थी जिसका वृतान्त बहुधा पुस्तकों में भी पाया जाता है। उसका आचरण बहुत उत्तम था। हमारी वर्तमान स्त्रियाँ अपने स्वभाव को सुशील और नम्र बनाने के लिये इस से शिक्षा ले सकती हैं।

ब्रह्मा इस अपनी धर्मपत्नि को बड़े प्रेम की दृष्टि से देखता था और पति-पत्नी दोनों परस्पर प्रेम में मग्न रहते थे।

ईश्वर करे सावित्री जैसी सद् आचरण वाली माताएँ इस-देश में पुनः अवतार धारण करके भारतभूमि को पवित्र करें।

अनसूया

अनसूया जिसकी चरित्र रामायण के अयोध्या काण्ड में वर्णित है, कर्दम ऋषि की पुत्री थी। उसकी माता का नाम देवहूती था। अनसूया की आठ बहनें थी और कपिल मुनि सांख्या शास्त्र का ग्रन्थकर्त्ता इसी देवी का भाई था, जिसने कपिल ऋषि के तत्वोध का चमकता हुआ तारा बनाया था। अपनी कन्याओं के पढ़ने लिखने में वह कैसे आलस्य कर सकती थी। वह स्वयं कुशल और धर्मात्मा थी। इस लिये

यह परम आवश्यक था कि उसकी सन्तान भी धर्मज्ञ और सुबुद्धि युक्त होती। नौ बहनों में अनसूया भोली भाली और धर्म में विशेष रुचि रखने वाली कन्या प्रतीत की जाती थी। उसका विवाह अत्रि ऋषि के साथ हुआ था जो बड़ा ज्ञानी, वेद शास्त्र का जानने वाला और जप तपादि व्रतों का धारण करने वाला था। अनसूया ऋषि की सेवा को परम धर्म समझती थी। वह पति-सेवा को अपना कर्तव्य समझती थी। और इसी में अपने दोन दुनियाँ की भलाई जानती थी इसी सती को संसार में बड़ा कष्ट सहना पड़ा, परन्तु उसने साहस और धैर्य से काम लिया और अन्त में सुख को प्राप्त हुई।

एक समय देश में दे ऐसा काल पड़ा कि एक एक दाना स्वप्न हो गया, खेती बारी सब मारी गई। वृक्षों के फल पत्रादि सब सूख गये और मनुष्य व जीव जन्तु सब भूखों मरने लगे। उसी समय में अत्रिऋषि अपने आत्मा को पवित्र और स्वभाव को दृढ़ करने के लिये एकांत सेवन और योगाभ्यास करने लगे। कभी २ उनकी समाधि की सीमा बढ़ जाती थी। और जब वह जागृत अवस्था में होते अनसूया उनकी क्षुधा और पिपासाग्नि को किसी प्रकार शान्ति करती। वर्षा शरद और ग्रीष्म ऋतु सब व्यतीत हो गये, इस पतिव्रता स्त्री ने अनेक प्रकार के दुःख सहे दिन २ भर भूखी रह गई, अन्न से भेंट नहीं हुई, परन्तु उसको सदैव इस बात का ध्यान रहता था कि ऐसा न हो अत्रि भगवान् समाधि से जागें तो उनको आवश्यक वस्तुओं के न होने से कष्ट उठाना पड़े। तन मन से वह इसी सोच में लगी रहती थी। और यदि हम से कोई पूंछे तो हम निस्सन्देह कहने को उद्यत हैं कि ऐसे सदाचार को, ऐसे धर्म-

भाव को और ऐसे पवित्र स्वभाव को भी योग कहते हैं। ऋषि पर क्या विदित था कि देश में काल पड़ा है, लोग भूखों मर रहे हैं, वह समाधि से उठे अनसूया हाथ जोड़े खड़ी है भगवान् ! क्या चाहिये ? जल भी है कन्द मूल फल भी रक्खे हैं। यह जितेन्द्रियता और यह सत्य प्रेम अब कहाँ देखने में आता है सच्ची बात तो यह है कि योगियों को भी इस स्व-भाव पर आश्चर्यित होना चाहिये।

सूखाकाल के कारण नाना प्रकार की आपत्तियाँ बढ़ती गईं। समीपवर्ती झरने जिनसे आश्रम वासियों को पानी मिलता था सूख गये। सती अब कोसों का चक्कर लगाकर पानी लाने लगी। फलफूल बड़ी कठिनता से मिलते थे, परन्तु इसका परिश्रम और उद्योग व्यर्थ नहीं जाता था, आज कमण्डलु हाथ में लिये वह कोस भर की दूरी से पानी लाती है, चार दिन पीछे वह सोता सूख गया उसको आगे बढ़ना पड़ा और उसके सूख जाने पर उसको दूसरी ओर खोज करनी पड़ी।

आश्रमवासी इस अकाल दुःख को न सह सके। एक-एक करके निकाल भागे। अनसूया भी चाहती थी कि वह आश्रम छोड़ दिया जाय परन्तु ऋषी समाधि की अवस्था में थे। उनके तप में कैसे विघ्न डाल सकती थी। उसने कभी कोई बात नहीं कहीं और जिस प्रकार होसका उनके लिये आवश्यक सामग्री एकत्रित करती रही।

दैव-वश जिस सरोवर से पानी मिलता था वह भी अक-स्मात् सूख गया। अनसूया को बड़ा दुःख हुआ। अब पानी कहाँ से आयेगा ऋषि समाधि से उठकर पानी माँगेंगे मैं कहां से उनको दूंगी बेचारी कई दिन आप भी प्यासी रही।

इसी समय के अनन्तर अत्रि समाधि से जागे और उठते ही पानी माँगा। परन्तु पानी कहाँ था। अनसूया ने उस समय भी ऋषि को इस दुर्घटना से सूचित करना उचित न समझा। कमण्डलु हाथ में लेकर वह पानी की खोज में निकली, आश्रम के दो चार कोस तक पानी का नाम न था। कुछ दूर चलकर एक वृक्ष के नीचे बैठकर रोने लगी। प्रभो! मेरी ओर दया दृष्टि से देखिये कृपाकर दया कीजिये स्वामी ने पानी लाने की आज्ञा दी और मैं इस आज्ञा पालन में असमर्थ हूँ। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ किसमें कहूँ, देश पर अकाल का पहाड़ टूट पड़ा है, अन्न पानी स्वप्न हो गया है, दुखित होकर सब आश्रम से भाग गये हैं, अब तेरे सिवाय किसका आश्रय है।

जब वह इस प्रकार विलाप रहा थी, एक तपस्विनी उधर से आ निकली। वह अनसूया के विलाप को सुनकर उसकी ओर चली और निकट आकर उसके दुःख का कारण पूछने लगी। अनसूया ने आद्योपान्त अपनी अवस्था कह सुनाई। तपस्विनी सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। उसने ऋषि पत्नी से कहा—"धन्य है तेरा पतिव्रत भाव, धन्य है पतिसेवा; यह व्रत का अनुष्ठान चिता पर पति के साथ जलने से अधिक प्रशंसनीय है। तू कुछ सोच न कर, मेरे साथ चल, मैं अवश्य तेरी सहायता करूँगी और यहीं मैं तेरे लिये जल का प्रबन्ध कर दूँगा।"

हाथ में बेर की लकड़ी लिये हुये तपस्विनी इधर उधर जलाशय खोजने लगी। आश्रम से थोड़ी दूर पर एक सूखा स्थान था। वहां उसकी लकड़ी हिलने लगी और तपस्विनी हँसकर बोली, ले पानी मिल गया। वह सुन आश्चर्यित हुई, क्योंकि एक बूंद पानी का कहीं पता न था। तपस्विनी बोली इस

स्थान में पानी का बड़ा गहरा कुण्ड है और केवल दो हाथ खोदने से पानी निकल आवेगा, तपस्विनी के पास उसके खोदने का यंत्र भी था। यह अनसूया के साथ मिलकर पृथ्वी खोदने लगी। थोड़ी देर पीछे उसमें से पानी की धार फूट निकली। ईश्वर का वर बड़ा है, या तो एक बूंद पानी स्वप्न था, या बात की बात में पानी हो गया। अनुसूया बड़ी आनन्दित हुई। तपस्विनी के पाँव पर गिर पड़ी और कमण्डलु भरकर पति के पास आई। पानी जितना ही स्वच्छ और निर्मल था उतना ही स्वादिष्ठ और मीठा था। अत्रि को आश्चर्य हुआ और जब उसकी पिपासाग्नि शांत हुई उसने अनसूया के देर से आने और ऐसे निर्मल और मीठे पानी के लाने का कारण पूछा, अनसूया ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। अत्रि को और भी आश्चर्य हुआ। वह तपस्विनी की खोज में बाहर आया, तपस्विनी पानी की धार के निकट बैठी थी, अत्रि ने उसको प्रणाम किया और आश्रम में चलने के लिये प्रार्थना की।

तपस्विनी ने कहा—"तुम्हारी स्त्री धन्य है। आज वर्षों से अकाल पड़ा है परन्तु वह तुम्हारी सेवा कितने परिश्रम और सावधानी से करती रही और तुमको लेशमात्र भी कष्ट न होने दिया। देश बिना अन्न के दु:खी है, ताल-तलैयां सब सूखी पड़ी हैं, चतुष्पद जीवों को घास का तिनका तक नहीं मिलता। सारे जीव जन्तु भूखों मर रहे हैं। ऐसी सती, धार्मिक और पतिजुष्टेव स्त्रियें बड़े भाग्य से मिलती हैं। ऋषि अपनी धर्मपत्नी की प्रशंसा सुन बड़ा प्रसन्न हुआ! तपस्विनी को आश्रम में लाया और समनुकूल बड़े आदर सत्कार से उसका आतिथ्य किया।

जो नदी इस सोते से प्रगट हुई। ऋषि पत्नी के स्मरणार्थ उसका नाम संसार में अत्रि गंगा विख्यात हुआ। और बहुत काल तक उससे उस खण्ड का स्थल पानी पाता रहा। लेख द्वारा प्रतीत होता है कि प्राचीन समय में ऋषि के नाम से वहां एक शिवालय बनवा कर अत्रेश्वर महादेव की मूर्ति स्थापित की गई थी।

अनसूया के कुक्ष से तीन पुत्र दत्तात्रेय, दुर्वासा और चन्द्र उत्पन्न हुये थे। तीनों पुत्र विद्वान्, पुरुषार्थी, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय और ईश्वर के भक्त थे। इनमें दत्तात्रेय बड़ा बुद्धिमान ज्ञानवान्, नीतिकुशल, दूरदर्शी और ईश्वर का उपासक था। विद्या सीखने के पीछे एक दिन यह माता के पास आकर कहने लगा—"तू बतादे किसको गुरू धारण करूं ?" यह सारा ब्रह्माण्ड ईश्वर की विचित्र रचना से सुशोभित है इसमें उसका ज्ञान हर जगह परिपूर्ण हो रहा है, यदि मनुष्य बुद्धिमान् है तो सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ उसके उपदेश का मुख्य कारण बन जाता है। यह ईश्वर के रचे हुये अलौकिक पदार्थ मनुष्य की स्वभाविक रीति से ज्ञान का सत्योपदेश करते हैं। यदि मनुष्य के हृदय में ज्ञान का चक्कर हो, तो वह इन पर पदार्थों से भली भांति शिक्षा ले सकता है। यदि वह अज्ञानता से इन पर विचार करने में असमर्थ है तो महापाण्डित्ययुक्त गुरू से भी कुछ लाभ नहीं उठा सकता।"

सोरठा

फूलै फलै न बेत, यदपि सुधा बर्षहिं जलद।

मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं विरंचि सम ॥

दत्तात्रेय उसी जगत् माता के पवित्र चरण कमलों की वन्दना करके बाहर निकला और उसने स्वाभाविक पदार्थों से ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त किया और वह उस समय ईश्वरीय ज्ञान तत्व बोध और आत्मिक स्वभाव में अद्वितीय था।

एक समय अनसूया प्रतिष्ठानपुर आई जो चन्द्रवंशी राजाओं की राजधानी थी, यहाँ नर्मदा एक ऋषि की पतिव्रता स्त्री रहती थी जिसका शरीर रोग और व्याधि से व्यर्थ हो गया था। नर्मदा एक दिन रो-रो कर उसको अपना दुःख सुनाने लगी; अनसूया ने कहा तू स्वयं अपने पति की औषधि है यदि तू, चाहे उसको सदैव आरोग्य रख सकती है। संयम और आत्मा की शुद्धता ईश्वर की उपासना यह सब ऐसे कार्य हैं जिनसे मनुष्य आरोग्य रहता है। अनसूया ने फिर नर्मदा के पति की यथावत् चिकित्सा की, उसका रोग प्राण घातक समझा जाता था। यद्यपि अनसूया की उपयोगी औषधि और नर्मदा की सेवा ने उसको अच्छा कर दिया। नर्मदा भी अनसूया की तरह पतिव्रता थी। और उसके स्मरणार्थ मध्यदेश में एक नदी इस नाम से विख्यात है।

जिस समय महात्मा (रामचन्द्रजी) वनवास की अवस्था में विचरते हुये अत्रि आश्रम पर आ निकले, ऋषि ने उनसे मिलकर सबसे पहिले अपनी पत्नी का चरित्र सुनकर सीता को उसके उपदेश सुनने की आज्ञा दी। और जब सीता बड़ी श्रद्धा से उसके चरणों की वन्दना करके बैठ गई, अनसूया ने उसको इस प्रकार उपदेश किया—सीता! तू धन्य है जो धर्म को इतना चाहती है सांसारिक सुखों का परित्याग करके

राम के साथ रहकर वन का दुःख उठाना तेरे धर्मभाव का प्रमाण है। स्त्री ग्राम नगर अथवा वन पर्वत में रहकर अपने पति की आज्ञा में तत्पर रहकर सेवा करती हैं वह परमपद की अधिकारी होती हैं। पुरुष चाहे अच्छा हो या बुरा स्त्री को देवता समझकर पूजा और प्रतिष्ठा करनी चाहिये। मेरी समझ में पुरुष से अधिक स्त्री का कोई मित्र और साथी नहीं है। लोक और परलोक में उसकी सेवा का ध्यान रखना स्त्री का परम धर्म है। प्रायः स्त्रियों में बुद्धि हीन और कुमार्गगामी भी होती हैं, यह अपने पति को अपने वशीभूत रखना चाहती हैं और अपनी बात को पति की बातों से ऊपर रखना चाहती है। इनका कभी भला नहीं होता। ऐसी स्त्रियां संसार में निन्दित होती हैं और उनका बड़ा अनादर होता है। धर्म के मार्ग से नीचे गिर जाती हैं। परन्तु सुशील स्त्रियाँ जो तेरी तरह गुणवती और धार्मिक हैं वह लोक परलोक दोनों को सुधारती हैं और धर्मात्मा लोग उनको देवी समझकर पूजते हैं। तू इन अच्छी स्त्रियों के मार्ग पर चलने का यथावत् प्रयत्न कर; अपने पति की सेवा कर और तुझको यश कीर्ति और बड़ाई सब कुछ मिलेगी।

यह उपदेश देकर अनसूया ने सीता से अपने पति अत्रि का चरित्र सुनाया, फिर अपने हाथ से उपटन लगाकर स्नान कराया। सुगन्धित तैलादि से उसके केशों को गूंधकर सुन्दर २ गहने और कपड़े पहनाये। फिर सीता से उसकी उत्पत्ति और स्वयंवर का वृत्तांत पूछा और उसको अपनी पुत्री की भांति लाड़ प्यार करके राम के पास भेज दिया।

अनसूया की सारी अवस्था पति की सेवा में व्यतीत हुई। पति के ध्यान में मग्न होकर वह योगियों की

दशा में रहती थी और ऋषि व उसकी संतान इस सती की बड़ी प्रतिष्ठा, आदर और सत्कार करते थे। जो कोई आश्रम में आता, इन पवित्र देवी की पूजा करता था और इसके प्रिय उपदेश के एक एक शब्द को बहुमूल्य रत्न की भांति अपने हृदय रूपी मंजूषा में रख छोड़ता था, इसके पातिव्रत का भाव सारे संसार पर पड़ गया था। और इसी पवित्र देवी की अनुग्रह से उसकी सन्तान पवित्र और धर्मात्मा बनगई।

धन्य है! वह नर जहां ऐसी स्त्रियाँ शोभायमान हैं, धन्य हैं वह प्राणी जिनमें पवित्र आत्मायें प्रकट होकर उनको स्वर्ग-धाम का सुख देती हैं। ईश्वर करे अनसूया का चरित्र हमारी बहिन बेटियों को धर्म का मार्ग बताये और उनमें अनसूया जैसी सच्ची देवियां उत्पन्न हों, क्योंकि जहाँ ऐसे धर्मात्माओं के पवित्र चरण जाते हैं,, दुःख दुरापत्ति दूर हो जाते हैं। वह समय था जब इस देश में ऐसे पवित्र जीव उत्पन्न होते थे।

महाराजा यशवंतसिंह की रानी

यह महारानी उदयपुर की राजपुत्री थीं। इन्होंने अपने पति महाराज यशवंतसिंह के साथ औरंगजेब और मुराद की सम्मिलित सेना से बड़ी वीरता से लड़कर जोधपुर लौट आने पर जो बर्ताव उनसे किया उससे अनुमान किया जाता है कि पहले क्षत्राणियों के कैसे उच्च भाव होते थे। फ्रांस के यात्री बर्नियर ने अपनी भारत-यात्रा की पुस्तक में लिखा है, कि इस अवसर पर यशवन्तसिंह की पत्नी ने, जो राणा के कुल की थी, अपने स्वामी के साथ जो व्यवहार किया वह भी सुनने

योग्य है। जिस समय उन्होंने सुना कि उनके पति आठ हजार में से पाँच सौ योधाओं को लिये हुये अप्रतिष्ठा के साथ नहीं वरन् बड़ी वीरता के साथ लड़कर युद्धक्षेत्र से चले आरहे हैं, तो उस समय उस शूरवीर योधा के निकट बधाई और आश्वासन को संवाद भेजना तो दूर रहा बड़ी निठुरता से आज्ञा दी कि किले के सब फाटक बन्द कर दिये जावें इसके पश्चात् उन्होंने कहा—"मैं ऐसे निन्दित पुरुषों को किले के भीतर नहीं आने दूँगी, ऐसा व्यक्ति मेरा पति, राणा का दामाद और ऐसा निर्लज्ज ! मैं कदापि ऐसे पुरुष का मुख देखना नहीं चाहती। ऐसे महान् पुरुष का सम्बन्धी होकर इसने उसके गुणों का अनुकरण न किया। यदि यह लड़ाई में वैरियों को हरा नहीं सकता तो यहां आने की क्या आवश्यकता थी, वहीं युद्धक्षेत्र में वीरता के साथ लड़कर मर जाना उचित था।" फिर तुरन्त ही उसके मन में दूसरा विचार पैदा हुआ और उसने कहा—"अरे कोई है जो मेरे लिये चिता तैयार करदे, मैं अपनी देह अग्नि के भेंट करूँगी' सचमुच मुझे धोखा हुआ, मेरे पति सचमुच लड़ाई में मारे गये; इस के सिवाय कोई दूसरी बात नहीं हो सकती।" और फिर कुछ सावधान होने पर क्रोध में आकर बहुत बुरा भला कहने लगी, आठ नौ दिन तक उसकी यही हालत रही, इस बीच में यशवंतसिंह से वह एक बार भी नहीं मिली।

अन्त में अब उसकी माँ उसके पास आई और उन्होंने समझाया कि घबराओ नहीं राजा कुछ विश्राम लेकर और नई सेना इकट्ठी कर फिर औरंगजेब पर आक्रमण करेंगे और अपनी वीरता एवं साहस का परिचय देंगे तब यह कुछ

होता है

कि इस देश की स्त्रियों को अपने नाम, प्रतिष्ठा और कुल गौरव का इतना ध्यान है और उनका हृदय कैसा सजीव है। मैं ऐसे और का दृष्टान्त दे सकता हूं, क्योंकि मैंने बहुत सी स्त्रियों को अपने पतियों के साथ चिता में जलकर मरते अपनी आँखों से देखा है लेकिन यह बातें मैं किसी दूसरे अवसर पर आगे चलकर वर्णन करूँगा। यहां मैं यह दिखाऊँगा कि मनुष्य के चित्त पर आशा, विश्वास, प्राचीन रीति-नीति, धर्म और सन्मान के विचार का कितना दूर प्रभाव पड़ता है।" पाठक! यह केवल वीर भाव था कि जिसने रानी को अपने प्राण-तुल्य प्रियतम को कठोर शब्द कहने को विवश किया। इस समाचार से पाठक समझ सकते हैं कि राजपूत स्त्रियाँ कैसी शूरवीर और उच्च विचार की होती हैं।

जवाहर बाई

सन् १५३३ ई० में गुजरात के बादशाह बहादुर शाह ने प्रचण्ड सेना के साथ चित्तौड़ पर आक्रमण किया। इस समय कायर और विषयी राणा विक्रमादित्य चित्तौड़ की गद्दी पर था, इसलिये सबको चिंता हुई कि चित्तौड़ का उद्धार कैसे होगा! सिसोदिया कुल के गौरव की रक्षा कैसे होगी, किस रीति से राजपूत वीर स्वदेश-रक्षा कर सकेंगे। ऐसी चिंताओं से सब चिंतित थे कि देवलिया प्रतापगढ़ के रावल बाघजी अपनी राजधानी से आकर राणा के स्थान में मरने मारने को तैयार हुये। उनकी आधीनता में सब राजपूत वीरता के साथ युद्ध के लिये सन्नद्ध होगये। मुसलमान सेना राजपूतों की अपेक्षा बहुत थी। परन्तु फिर भी राजपूत विच-लित न हुये।

सबने शपथ खाई कि या तो पूर्ण पराक्रम से लड़कर विजय प्राप्त करेंगे या युद्ध में प्राण देकर वीर गति प्राप्त करेंगे। युद्ध के आरम्भ होते ही बहादुर शाह ने पहले अपनी तोपों से ही काम लिया, परन्तु राजपूत तोपों की गर्जना सुनकर द्विगुण उत्साह से उत्साहित होकर जिधर से गोला आता था, उधर बड़ी फुर्ती से अपने तीक्ष्ण बाण चलाने लगे। उस समय तोपों में न तो बहुत दूर की मार ही होती थी, और न बहुत जल्द-जल्द चलती थी, इसलिये तोप के साथ-साथ बन्दूकें भी मुसलमान सेना को चलानी पड़ी। बन्दूकों के धूएँ से रणस्थल अन्धकाराच्छादित हो गया। दोनों पक्ष के बहुत सैनिक मारे गये, परन्तु बहादुर शाह किसी रीति से चित्तौड़ पर अधिकार न कर सका।

अन्त में बहादुर शाह ने एक ओर के किले की दीवार बारूद की सुरंग से उड़ाने का विचार किया और जो स्थल सुरंग से उड़ाया गया था, वहाँ हाड़ा वीर अर्जुन राव अपने ५०० योद्धाओं के साथ युद्ध कर रहे थे, इसलिये अपने समस्त सैनिकों के सहित मारे गये। वैरियों ने इस समय भग्नदुर्ग के भीतर घुसने के लिये धावा किया, परन्तु चित्तौड़ अभी वीर-शून्य न था। वीरवर चूड़ावत राव दुर्गादास, उसके मुख्य सुभट सन्ताजी और दुदाजी तथा कितने एक सामन्त और सैनिक शत्रुओं के सामने अचल और अटल रूप से डटे रहे। देह में प्राण रहते कोई उनको हटा न सके, वीर विक्रम से वे मुसलमानों के धावे को हटाते रहे, परन्तु थोड़े में राजपूत कब तक प्रचण्ड यवन सेना का प्रतिरोध कर सकते थे।

वीरत्व के साथ युद्ध करते रहने के पीछे जब वे मरते मरते कम रह गये, तो रणोन्मत्त मुसलमान अली २ कहते हुए किले

में घुसने लगे। अकस्मात् फिर उनकी गति का अवरोध हुआ, सबने चकित होकर देखा कि योद्धावेष में एक रमणी प्रचण्ड रण तुरंग पर चढ़ी हुई और हाथ में भाला लिये हुए खड़ी हुई है। यह वीर महिला राजमाता जवाहरबाई थी, जवाहरबाई ने जब योद्धाओं के मर जाने का समाचार सुना तो उसको विचार हुआ कि अब यदि कहीं राजपूत निराश और साहसहीन हो गये, तो चित्तौड़ का बचना कठिन है, इसलिये कवच धारण कर और शस्त्र ले स्वयं वहाँ पहुँची जहाँ घमासान युद्ध हो रहा था। योद्धाओं को युद्ध के लिये उत्साहित करती हुई आप भी लड़ने लगी, रानी की वीरता को देखकर राजपूतों ने ऐसा पराक्रम दिखलाया कि यवनों को पीछे हटना पड़ा।

यह वीर रानी सब राजपूतों के आगे रंध्रपथ रोके खड़ी थी, जो यवन आगे को बढ़ता था वही इसके भाले से मारा जाता था। भाले के दारुण प्रहार से बहुत से यवन सैनिक मारे गये।

कई यवन वीर एक साथ आने लगे परन्तु फिर भी वीर क्षत्राणी निरुत्साह न हुई; असीम साहस से रणोन्मत यवनों से युद्ध करती रही। दूर से गजारूढ़ बहादुरशाह विस्मयापन्न होकर देख रहा था।

रमणी का अद्भुत रणकौशल देखकर वीरत्वाभिमानी यवनवीर आश्चर्ययुक्त हुआ, वीर महिषी जवाहरबाई जहाँ यवन दल की प्रबलता देखती वहीं तीव्र वेग से अपने घोड़े को लाकर युद्ध करने लगती थी, जबकि राजपूतों और मुसलमानों में घोर युद्ध हो रहा था, धड़ शीश गिर-गिर कर लड़ रहे थे, शव के ऊपर शव गिर रहे थे, उस समय में रानी के शरीर में तोप

का गोला आकर लगा और वह जगत् में अपनी वीरता का अपूर्व दृष्टान्त और आत्मोत्सर्ग का ज्वलंत उदाहरण छोड़कर स्वर्गलोक को सिधार गई। मेवाड़ की ऐसी-ऐसी शूरवीर और सती पतिव्रता रानियों के कारण मेवाड़ को और भी यश प्राप्त हुआ है।

प्रभावती

यह सती गन्नौर के राजा की रानी थी, रूप लावण्य और गुणों में अत्यन्त प्रसिद्ध थी. इसकी सुन्दरता पर लुब्ध होकर एक यवन बादशाह ने गन्नौर पर चढ़ाई की। यह समाचार पाकर रानी बड़ी वीरता के साथ लड़ी। जब बहुत से वीर सैनिक मारे गये और सेना थोड़ी रह गई, तब किला यवनों के हाथ में चला गया, रानी इस पर भी नहीं घबड़ाई और बराबर लड़ती रही। जब किसी रीति से बचने का उपाय न रहा तो अपने नर्मदा किले में चली गई, परन्तु यवन सेना उसका बराबर पीछा किये गई, बड़ी कठिनाई से किले में घुसकर उसने किले का फाटक बन्द करा दिया। राजपूत वहाँ बहुत से लड़कर मारे गये। यवन बादशाह ने रानी के पास पत्र भेजा जिसमें यह लिखा था कि "सुन्दरी! मुझे तुम्हारे राज्य की इच्छा नहीं है, मैं तुम्हारा राज्य तुमको लौटाता हूँ, किन्तु और भी तुमको देता हूँ, तुम मेरे साथ विवाह करलो। विवाह होने पर मैं तुम्हारा दास होकर रहूँगा।" रानी को यह पत्र पढ़कर बहुत क्रोध आया, परन्तु क्रोध करने से क्या हो सकता था। इसलिये उसने सोच विचार कर यह उत्तर लिखा कि "मुझको विवाह करना स्वीकार है, किन्तु अभी आपके लिये

विवाह योग्य पोशाक तैय्यार नहीं है। कल तैय्यार हो जाने पर शादी होगी।" बादशाह यह उत्तर सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। दूसरे दिन रानी ने बादशाह के पास एक उत्तम पोशाक भेजकर यह कहलाया कि इसको पहनकर विवाह के लिये शीघ्र आओ। रानी की भेजी हुई पोशाक को पहन कर बादशाह बड़ी खुशी के साथ शादी की उमंग में रानी के महल में आया। रानी का दिव्य रूप देखकर कहने लगा—"अहा! यह तो कोई अप्सरा है। इसके सहवास में तो जीवन बड़े आनन्द से व्यतीत होगा।" ऐसी बातें सोचकर जो आनन्द तरंग उस समय उसके हृदय में उठ रही थी उसका कुछ ठिकाना न था, परन्तु यह शीघ्र ही आनन्द तरङ्ग शोक सागर में परिवर्त्तित हो गया, एकाएक बहुत भयंकर दर्द उसके शरीर में उठ खड़ा हुआ। बादशाह दर्द से व्याकुल हो गया, गर्मी से मूर्च्छागत होने लगा और आँखों तले अन्धेरा छा गया, शरीर की पीड़ा से छटपटा कर कहने लगा—"अरे रे रे मैं मरा।" रानी ने उसका यह वचन सुनकर कहा—"आपकी अवस्था अभी पूरी हुई चाहती है, आपके शुभ विवाह में पहले ही आपका मृत्यु आज होने को है। तुम्हारी अपवित्र इच्छा से अपने सतीत्व रूपी रत्न की रक्षा के लिये इसके सिवाय और कोई उपाय न था कि मैं तुम्हारी मृत्यु के लिये विष से रङ्गी हुई पोशाक भेजती।" इतना कह कर सती ने ईश्वर से कुछ प्रार्थना की और किले पर से नर्मदा नदी में कूदकर अपने प्राण त्याग किये। बादशाह भी वहीं तड़फ तड़फ कर तत्काल मर गया। इस रीति से सती प्रभावती ने समय विचार कर अपने सतीत्व धर्म और कुल गौरव की रक्षा की। धन्य है ऐसी

मनियों को जिन्होंने कि तरह तरह के कष्ट सहकर और प्राण देकर अपने सतीत्व धर्म की रक्षा की जिससे आज तक उनके नाम भारत के इतिहास में पवित्रता के साथ लिये जाते हैं।

रानी हाड़ी जी

रूपनगर की राजकुमारी रूपवती के रूप की प्रशंसा सुनकर बादशाह औरङ्गजेब ने बलात्कार उससे विवाह करना चाहा, जब रूपवती को यह समाचार ज्ञात हुआ तब उसने अपने कुल पुरोहित द्वारा उदयपुर के परम प्रतापी महाराणा राजसिंहजी के पास एक पत्री भेजी, जिसमें लिखा था कि औरङ्गजेब मुझे ब्याहना चाहता है। परन्तु क्या राजहंसिनी गृद्ध के साथ जावेगी? क्या पवित्र वंश की कन्या म्लेच्छ को पति बनावेगी? इस प्रकार का आशय पत्री में लिखकर अन्त में लिखा कि सिसोदिया कुल भूषण और क्षत्रिय वंश शिरोमणि मैं तुमसे पाणिग्रहण की प्रार्थना करती हूं। शुद्ध क्षत्रिय रक्त तुम्हारी नसों में संचारित है। यदि शीघ्र न आ सकोगे और अपनी शरण में लेना स्वीकार न करोगे तो मैं आत्मघात करूँगी और यह आत्महत्या का पाप तुम्हारे सिर लगेगा।

पुरोहित ने यह पत्री महाराणा साहब को दी जो कि अपने सरदारों के साथ दर्बार में बैठे हुए थे। पत्री को पढ़कर महाराणा जी कुछ विचारने लगे चूड़ावत सरदार, जो समीप ही बैठे थे, कहने लगे कि महाराणा क्या है? पत्र पढ़कर किस चिन्ता में निमग्न होगये। महाराणाजी ने वह पत्र चूड़ावतजी को पढ़ने को

दिया, जिसको पढ़कर उन्होंने कहा कि यह विचारी अबला मन में आपको वर चुकी अब आपका कर्त्तव्य है कि पाणिग्रहण करें।

महाराणाजी ने उत्तर दिया कि रूपनगर की राजकुमारी के धर्म और क्षत्रिय कुल गौरव की रक्षा के लिये ससैन्य रूपनगर जाऊँगा, परन्तु एक बात का विचार हो रहा है कि समय बहुत थोड़ा रहा है और हम जल्दी में यथेष्ठ युद्ध प्रबन्ध न कर सकेंगे, इसलिये यदि बादशाह की सेना अधिक हुई तो घोर युद्ध होने पर हम सब मारे जावेंगे। और इस तरह से राठौरनी जी का मनोरथ सिद्ध न हो सकेगा और अन्त में उनको आत्मघात करना ही पड़ेगा। शूरवीर चूड़ावत सरदार ने उत्तर दिया कि आप थोड़े मनुष्यों को साथ लेकर रूपनगर की राजकुमारी को ब्याहने पधारें और मैं पहुँचने से पहले ही बादशाह की सेना को मार्ग में ही रोकता हूं और इस सेना को मैं उस समय तक रोके रहूंगा जब तक आप राठौरनी राजकुमारी का पाणिग्रहण करके उदयपुर को न लौट आवेंगे। महाराणाजी ने इस उदार सम्मति के लिये उनकी बड़ी प्रशंसा की और कहा कि यदि आप ऐसा कर सकें तो चिन्ता ही क्या है। आपने जो उपाय बतलाया वह ठीक है। सब सरदारों ने भी अपनी अपनी सेना लेकर साथ जाने का निश्चय किया। महाराणाजी ने उसी समय पत्र लिखकर ब्राह्मण को रूपनगर को विदा किया।

चूड़ावत भी तत्काल विदा हो अपनी राजधानी में आये और दूसरे दिन प्रातःकाल लड़ाई का डंका बजवाकर अपने योद्धाओं सहित युद्ध के लिये प्रस्थानित होने लगे कि इतने में अपनी नवयौवना रानी को महल के झरोखे में से झाँकते हुए

देखा। रानी का मुख देखते ही उसकी युद्ध उमङ्ग कुछ मंद पड़ गई और मुखाकृति की कांति फीकी पड़ गई, वे उदास मुख से महल पर चढ़े, परन्तु रानी ने तुरन्त पहिचान लिया कि स्वामी का पहला तेज नहीं रहा। वह बोली कि "महाराज! यह क्या हुआ? कोई अशुभ समाचार सुन पड़ा जो मुख की कांति फीकी पड़ गई, जिस मन से आप डंका बजवाकर चौक में आये थे और उस समय आपकी आकृति पर जो तेज विराजमान था वह अब न जानें कहाँ उड़ गया। लड़ाई का धौसा आपने जिस उत्साह से बजवाया था अब वह क्यों मन्द पड़गया। सो बताइये क्या कोई शत्रु चढ़ आया है, जो लड़ाई का डंका बजवाया गया है? यदि ऐसा है तो आपका मुखारविन्द क्यों उतर गया, लड़ाई का डंका सुनकर क्षत्री को तो लड़ाई का आदेश होना चाहिये था, परन्तु आप इसके विरुद्ध शिथिल क्यो होगये कोई कारण अवश्य है, आपको मेरी शपथ है, आप अवश्य कहें।"

चूड़ावतजी ने उत्तर दिया कि रूपनगर की राठौर वंश की राजकुमारी को दिल्ली का बादशाह बलात् व्याहने आता है और वह राजकुमारी मन वचन से हमारे राणा साहब को बर चुकी है इसलिये प्रातःकाल ही राणा साहब उसे व्याहने जावेंगे और बादशाह का मार्ग रोकने के लिये मेवाड़ की सारी सेना मेरे साथ जाती है। वहाँ घोर संग्राम होगा और हमें फिर वहाँ से लौटने की आशा नहीं है, क्योंकि बादशाही सेना के सामने हमारी सेना बहुत थोड़ी होगी। मुझे मरने का तो शोक नहीं मनुष्य मात्र को मरना है। जो मरने से डरूँ तो मेरी माता की कोख को कलंक लग जावे, मेरे पूर्वज चूड़ाजी के नाम पर धब्बा लग जावे। मरने से तो मैं डरता नहीं हूँ। अमर कोई नहीं रहा और न मैं रहूंगा। आगे पीछे मरना सभी को है

परन्तु मुझे केवल तुम्हारी चिन्ता है । तुम अभी ब्याही हुई आई हो । ब्याह का कुछ सुख भी नहीं देखा और आज मरने के लिये जाना है । मुझे तुम्हारा ही विचार व्याकुल कर रहा है । चौक में आकर ज्योंही तुम्हारा मुख देखा कि मेरा कठोर हृदय कोमल पड़ गया । यह सुन हाड़ी रानी बोली—महाराज !यह आप क्या कहते हैं । यदि आप रणक्षेत्र में विजय प्राप्त करेंगे, तो इससे बढ़कर मेरे लिये संसार में दूसरा कौन सा सुख है, मृत्यु समय आने पर चलते-चलते खड़े २ बैठे २ अथवा बातें करते २ अचानक ही मनुष्य काल के वश में हो जाता है । जिसकी मृत्यु नहीं वह रणक्षेत्र में भी बचता है और जब मृत्यु समय आ जाता है तो सुख शाँति पूर्ण घर में भी नहीं बचता । घर में जब काल आकर ग्रसता है तो कौन बचा लेता है । इसलिये युद्ध के लिये जाते हुए किसी को मोह करना या सांसारिक सुखों की वासना मन में रखना उचित नहीं । इसलिये किसी वस्तु में ध्यान न रखकर शांतिपूर्वक युद्ध के लिये पधारिये, और अपने स्वामी (महाराणाजी) का कार्य निश्चिंतता से करिये, आयु होगी और ईश्वरेच्छा से रण में विजय मिलेगी तो जीते हुए संसार में हम सब को सुख प्राप्त होगा । और कदाचित् जो युद्ध में काम आये तो पीछे जो स्त्री का कर्त्तव्य है उसे मैं भली भांति समझे हुए हूँ । रणक्षेत्र में मृत्यु मिलने पर अन्तकाल पर्यन्त स्वर्ग में दाम्पत्य सुख भोगेंगे । सो हे प्राणनाथ ! सहर्ष रणक्षेत्र में पधारिये और जय पाये बिना न आइये । हम दोनों की भेंट स्वर्ग में होवेगी । आप अपने कुल के योग्य सुयश को रण में प्राप्त कीजिए । और पीछे क्षत्राणी को अपना धर्म किस तरह पालना चाहिए, यह मुझे ज्ञात है, मैं आपके पीछे

अपने धर्म पालन में किसी बात की त्रुटि और विलम्ब न करूँगी।"

इस भांति बातें होते २ हाड़ी रानी से चूड़ावत विदा होने को ही थे कि रानी ने कहा—"महाराज! विजय पाकर शीघ्र लौटना। आप अपने कुल का धर्म जानते हैं, इसलिये विजय-कामना से युद्ध में प्रवृत्ति हूजिए। और दूसरी किसी बात में मन न रखकर रणक्षेत्र में केवल शत्रु संहार करने में ध्यान लगाइए।"

चूड़ावत बोले—"हाड़ीजी, जय पाकर पीछे लौटने की आशा नहीं है, मरना निश्चय ही है, शत्रु को पीठ दिखाकर जीते आना भी धिक्कार है। इसलिए हमारी और तुम्हारी यह अन्तिम भेंट है तुम समझदार हो इसलिये अपनी लाज रखना, और हमरण में काम आजावेंगे तो पीछे अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करना।" हाड़ीजी ने उत्तर दिया—"महाराज! आप मेरी ओर से तो निश्चित रहिए। आप अपना धर्म पूरा करें और मैं अपने धर्म में न रुकूंगी, यह बात आप पत्थर की लकीर समझें।" इस प्रकार विश्वास दिलाने पर भी चूड़ावतजी को विश्वास न हुआ और यही दुविधा रही कि जाने मेरे मरने के पीछे हाड़ी जी सती होंगी कि नहीं। चूड़ावतजी का दृढ़ विश्वास था कि यदि मैं रणभूमि में मारा जाऊँ और हाड़ीजी मेरे साथ सती हो जावें तो स्वर्ग में जाकर निरंतर सुख भोगूंगा। उनके हृदय में यही सन्देह जमा हुआ था कि संसार सुख का अनुभव न करने वाली तरुण अवस्था की हमारी रानी न जाने सती होगी या नहीं। रानी को समझा बुझाकर चूड़ावत चल दिए, परन्तु सीढ़ियों से उतरते २ फिर रानीजी से कहा कि "हमतो जाते हैं, तुम अपना धर्म न भूल जाना।" फिर जब चौक में पहुंचे

और युद्ध का धौंसा बजवा कर प्रस्थान करने लगे तो निज का एक सेवक हाड़ीजी की सेवा में भेजा, उसके द्वारा फिर कहलाया कि "रानी आप अपना धर्म न भूल जाना। तब हाड़ी जी समझीं और उन्हें विदित हुआ कि मेरे स्वामी का मन मेरे में लगा हुआ है और जब तक इनका चित्त मेरी ओर रहेगा तब तक इनसे रण में पूर्ण काम न किया जावेगा और जिस काम के लिए जाते हैं निष्फल होवेगा। हाड़ीजी उस सेवक से बोली कि "मैं तुमको अपना सिर देती हूँ। इसे ले जाकर अपने स्वामी को दे देना और कहना कि हाड़ी जी पहले ही सती हुई हैं और यह भेंट भेजी है कि जिसे लेकर आनन्द के साथ रणक्षेत्र में जाइए और विजय पाइए और अपना मनोरथ सफल कीजिए: किसी प्रकार की चिन्ता न रखिए।" यह कह कर तलवार से अपना सिर काट डाला। उसे लेकर वह सेवक चूड़ावतजी के पास पहुँचा और उन्हें रानी का सिर सौंपकर उनका सारा कथन उनको सुना दिया, यह देख कर चूड़ावत आनन्द मय होगए।

केतुबाई

यह बूंदी के राव नारायणदास हाड़ा की रानी थी। राव नारायणदास बड़े वीर पराक्रमी और बलवान पुरुष थे। इनके वीरत्व व विक्रम की बहुत सी आख्यायिकायें राजपूताने में कही जाती हैं परन्तु जहाँ इनमें अनेक प्रशंसनीय गुण थे वहाँ इनमें अफीम सेवन का बड़ा दुर्गुण था! कहा जाता है कि वे सात पैसे भर अफीम नित्य खाया करते थे।

संवत १८५१ में माडू के पठानों ने चित्तौड़ के राजा रायमल्ल

पर चढ़ाई की तो राव नारायणदास को उन्होंने अपनी सहायता के वास्ते बुलाया। नारायणदास ५०० वीर हाड़ाओं को साथ लेकर चित्तौड़ को चले, एक मंजिल चलकर मार्ग में एक गांव में कुएँ के निकट अमल पानी लेकर पेड़ के नीचे लेट गये, सफर की थकावट से तत्काल उनको निद्रा आगई, उनका मुख खुला हुआ था जिसमें कुछ मक्खियां भर गईं। एक तेलिन उसी समय पानी भरने के लिये आई, जिसने रावजी के चित्तौड़ जाने का हाल सुनकर कहा कि क्या हमारे राणाजी को इसके सिवाय और कोई सहायता के लिये नहीं मिला। भला जब इसे अपने शरीर की ही सुधि नहीं, तो इस से राणाजी की क्या सहायता हो सकेगी। अमली की श्रवण-शक्ति प्रबल होती है, तेलिन का वाक्य सुनकर, आंखें मलते २ रावजी उठ खड़े हुए और उसके सन्मुख जाकर उससे कहा—"रांड क्या कहती है, फिर तो कह?" तेलिन डर के मारे उस बात को फिर न कह सकी, और क्षमा प्रार्थना करने लगी। उस युवती के हाथ में एक लोह दंड था जिसको रावजी ने उसके हाथ से लेकर और हँसली की तरह मोड़कर उसके गले में पहरा कर कहा—"जब तक हम राणा जी की सहायता देकर लौट न आवें, तब तक इसे पहिरे रहना, यदि हमारे लौटने से पहिले कोई ऐसा बलिष्ठ आ जाय जो इसको सीधा करके गले से उतार ले तो उससे उतरवा लेना। जिस समय हाड़ा राव चित्तौड़ पहुँचे तो उन्होंने यह देखकर कि चित्तौड़ को शत्रुओं ने चारों ओर से घेर रक्खा है, एकाएक सिंह विक्रम से उन पर आक्रमण किया। हाड़ियों की तलवार के सन्मुख मुसलमान ठहर न सके, अनेक मुसलमान वहीं मारे गए और अनेक इधर उधर भाग गए, तब बूंदी राव का विजय नक्कारा बड़े जोर से

स्वीकार किया। रानी बड़ी सावधानी से नियत समय पर अपने स्वामी को अफीम दिया करती थी और कुछ कुछ घटाती भी जाती थी। राव नारायणदास को नियमबद्ध होकर अपनी रानी के हाथ से अफीम सेवन करने में कष्ट तो बहुत होता था, परन्तु अपने प्रण पर दृढ़ रहे और उनकी चतुर रानी ने भी धीरे धीरे उनकी अफीम छुटवा दी।

राव नारायणदास और केनूबाई जीवन विवाह के पश्चात् बड़े आनन्द के साथ व्यतीत हुआ, यथा समय एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम सूरजमल रक्खा गया, बड़े होने पर सूरजमल भी वीरता और पराक्रम में अपने बाप के समान प्रसिद्ध हुए। इनकी भुजा आजानुलम्बी थी, ये भी चित्तौड़ में ब्याहे थे और इनकी बहिन सूजाबाई राणा चित्तौड़ को ब्याही गई थी। एक बार राव सूरजमल चित्तौड़ के दरबार में बैठे हुए ऊँघ रहे थे कि एक पुर्विया सरदार ने उपहास की रीति से एक घास का तिनका उनके कान में प्रविष्ट किया, सूरजमल ने कान में तिनके के प्रविष्ट होते ही एक हाथ खाँडे का छेड़ने वाले पुर्विया के दिया, जिससे तत्काल वह मरकर फर्श पर गिरा।

पुर्विया सरदार का बेटा बदला लेने की घात में रहा और उसने चालकी से राणाजी को विश्वास करा दिया कि राव सूरजमल केवल अपनी बहिन से मिलने ही नहीं आते। एक दिन राणा और राव दोनों एक थाल में भोजन कर रहे थे और सूजाबाई बैठी हुई पंखा झल रही थी। कि इसके भाई ने सिंह की भाँति [illegible] और इसके पति ने बालक की भांति इस पर राणा [illegible]आया परन्तु अपने स्थान पर अपने बहनोई का वध

करना उचित न समझा। राणा ने विदा होते समय राव से कहा कि मैं वसन्त ऋतु में आखेट के लिये बूंदी आऊँगा। निदान वसन्त के आगमन पर वसन्ती वस्त्र धारण कर राणा अपने सरदारों सहित बूंदी पहुंचे तो राणा के संकेतानुसार पूर्वोक्त पुर्बिया सरदार ने राव सूरजमल की ओर तीर चलाया। राव ने उसको संयोग वश अपनी ओर आता हुआ समझकर अपनी कमान से दूसरी ओर फेर दिया। दूसरा तीर जो राणा के खवासरदार भाई ने चलाया उसको भी राव ने फेर दिया। अब राव को उनकी ओर से सन्देह हुआ। इतने में अश्वारूढ़ राणा उनकी तरफ आये और खड्गघात किया। राव धराशायी हुए, परन्तु रूमाल से अपना घाव बाँधकर उठे और उच्चस्वर से पुकार कर कहा—"तुम भाग जाओ, परन्तु मेवाड़ को तुमने कलंकित कर दिया।" वह पुर्बिया राणा से बोला कि घाव पूरा नहीं आया। यह सुनकर राणा लौटे और राव पर फिर आक्रमण किया। जबकि राणा ने शस्त्राघात करने को हाथ उठाया तो हाड़ा राव ने घायल शेर की भांति बड़े क्रोध से उनका कपड़ा पकड़कर घोड़े से नीचे गिरा लिया और एक हाथ से उसका कंठ दबाया और दूसरे हाथ से खाँड़ा लेकर उनके हृदय में घुसेड़ दिया। शूरवीर राव अपने वधकर्ता को अपने पाँवों तले मरता हुआ देखकर सन्तुष्ट हुए और तत्काल ही आप भी मृत्यु को प्राप्त हुए।

राव और राणा जहाँ मृत्यु को प्राप्त हुए थे वहाँ दोनों की रानियाँ सती होने को गईं। चिता तैयार हुई और सूजाबाई अपने बे सोचे समझे कथन के लिये पश्चाताप करती हुई अग्नि में भस्मीभूत होकर सती हुईं। राणा की बहिन राव के साथ

मती हुई, दोनों सतियों की छतरियाँ अभी तक उस जंगल में बनी हुई इस अविचार और अन्याय सूचक घटना का स्मरण दिला रही हैं।

साहबकुंवरि

पंजाब में पटियाला की रियासत जम्बू कश्मीर के अतिरिक्त सबसे बड़ी रियासत है। इसके रईस की सलामी सत्रह तोपों की है। और पंजाब के राजा महाराजाओं के दरबार में इनकी दूसरी बैठक है। इस रियासत के राजा साहबसिंह हो चुके हैं, इनमें राज्य शासन करने की योग्यता न थी, परन्तु इनकी बहिन साहब कुंवरि बड़ी योग्य और चतुर थी। अपने भाई में राज्य प्रबन्ध की अयोग्यता देखकर अपने पति सरदार जयमलसिंह (जो कि फतेहगढ़ के एक बड़े भाग के अधिकारी थे) की आज्ञा से पटियाले में रहकर रियासत का प्रबन्ध भार इन्होंने अपने शिर पर लिया। रानी साहबकुंवरि के सुप्रबन्ध से राज्य की दशा बहुत सुधरी। सब प्रकार से राज्य की उन्नति हुई और प्रजा सुख शांति से जीवन निर्वाह करती थी।

साहबकुंवरि किसी गुण में पुरुषों से कम न थी। इनमें जैसी राज्य प्रबन्ध की योग्यता थी, काम पड़ने पर उन्होंने वैसे ही युद्ध कुशलता और वीरता का भी परिचय दिया। एक बार जयमलसिंह को उनके चचेरे भाई फतहसिंह ने कैद कर लिया और उनके सारे इलाके पर अधिकार कर लिया। रानी साहबकुंवरि ने जब यह बात सुनी तो आप सेना लेकर फतहगढ़ पहुंची और लड़कर फतहसिंह को पराजित किया और अपने पति को छुड़ाकर उनके इलाके पर फिर उनका अधिकार कराया।

सन् १७६४ में मरहठों की सेना ने पटियाले पर आक्रमण किया, कई एक सिक्ख सरदारों को आधीन करके रियासत पटियाला को भी आधीन होने का समाचार भेजा । मरहठे समझते थे कि रियासत पटियाला का राज्य प्रबन्ध जब एक स्त्री के हाथ में है तो उसका आधीन होना क्या कठिन है । परन्तु यहाँ की तो कुछ दशा ही और थी, रानी साहबकुंवरि का हृदय आधीनता का संवाद सुनते ही क्रोधाग्नि से दग्ध हो गया । उन्होंने तत्काल युद्ध की तय्यारी की और सात हजार सेना मरहठों से लड़ने को भेजी, अम्बाले के समीप मरदानपुर के मैदान में लड़ाई हुई उस समय मरहठे वीरता, पराक्रम और युद्धनिपुणता में एक ही थे। पटियाले की सिक्ख सेना उस समय युद्धकला से अनजान थी, इसलिये लड़ाके मरहठों के सामने सिक्खों का ठहरना कठिन हो गया। जब यह समाचार रानी साहबकुंवरि ने सुना तो आप युद्धक्षेत्र में आई। पटियाले की सेना पीठ दिखाने ही को थी कि रानी तलवार हाथ में लेकर रथ में से कूद पड़ी और अपनी सेना से कहने लगी—"पटियाले के योद्धाओ! युद्ध में पीठ दिखाना बड़ी कायरता की बात है। ऐसी कायरता से युद्ध में मारे जाने के भय से यदि भाग जाओगे तो क्या फिर कभी न मरोगे? जब एक न एक दिन मरना ही है तो फिर वीरों की भाँति लड़कर क्यों न मरो, जिससे तुम्हारी सब प्रशंसा करें । मैं शरीर में प्राण रहने तक लड़ने के लिये कटिबद्ध हूं। मैं युद्ध-भूमि से एक पग पीछे न हटूंगी। यदि तुम्हारे भाग जाने पर मैं मारी गई तो तुम्हारी कितनी अप्रतिष्ठा होगी, तुम कहीं मुख दिखाने योग्य न रहोगे। मैं तुम्हारे राजा की बहिन होने से तुम्हारी भी बहिन हूं, आओ युद्ध में अपनी बहिन का साथ दो।

रानी का यह उत्तेजनापूर्ण कथन सुनकर प्रत्येक सैनिक ने दृढ़ प्रतिज्ञा की, कि मरजावेंगे परन्तु युद्धभूमि से न हटेंगे। घोर युद्ध हुआ. सिक्खों की सेना बहुत मारी गई। परन्तु फिर भी बाकी योद्धे वीरता पूर्वक लड़ते रहे। रानी की दृढ़ता को देखकर कोई युद्ध से न हटा। जब रात हुई तो कुछ लोगों ने सम्मति दी कि अब सेना थोड़ी रह गई है और इस स्वल्प सेना से विजय प्राप्त करना असम्भव है, इसलिये पटियाला चलकर और-और आदमियों का प्रबन्ध करो। रानी ने इन लोगों की सम्मति न मानी, किन्तु कहा कि इस सेना से रात के समय मरहठों पर धावा करो और प्राण प्रण से लड़ो। निदान सिक्खों से मरहठों पर प्रबल वेग से आक्रमण किया जिससे मरहठे व्याकुल हो गये और इसलिये जीत सिक्खों की ही हुई।

१७६३ में जार्ज टामस नामक फ्रांसीसी हाँसी हिसार पर अधिकार करता हुआ बहुत सी पैदल सेना, १००० सवार और ५० तोपें लेकर सिक्ख रियासतों पर चढ़ आया और जब कि सिक्ख सरदार लाहोर गये हुए थे तो इसने जीन्द को घेर लिया। सब सिक्ख सरदारों की फौजें टामस की सेना पर बढ़ीं, परन्तु सफलता प्राप्त न हुई। अन्त में रानी साहबकुंवरि अपने वीर सैनिकों को लेकर युद्धभूमि में पहुँची और विकट युद्ध हुआ टामस की सेना व्याकुल हो गई, इसलिये टामस को बेबस होकर अपनी सेना को भेलम की ओर हटाना पड़ा। दूसरी सिक्ख सेनाओं ने टामस को पीछे हटता देखा तो उसका पीछा किया। टामस की सेना ने लौटकर सिक्खों की सेना पर गोलों की ऐसी वर्षा की कि सिक्ख सेना विकल होकर इधर-उधर भाग गई।

इस पराजय से सिक्ख ऐसे साहस हीन हो गये कि उनको टामस से सन्धि करनी पड़ी। इस पीछा करने वाली सिक्ख सेना में रानी साहबकुंवरि की सेना सम्मिलित न थी।

इस युद्ध के पश्चात् रानी साहबकुंवरि पटियाले चली आई और जब रियासत के लिये किसी बाहरी शत्रु का भय न रहा, तो राजा साहबसिंह के स्वार्थी मुसाहिबों ने राजा को बहकाया और रानी साहब के विरुद्ध राजा के ऐसे कान भरे कि वह अपनी बहिन के सब उपकार भूल गया और उस पर मिथ्या दोषारोपण कर प्रसिद्ध किया कि मुझको साहबकुंवरि से अपने प्राण का भय है। रानी साहबकुंवरि ने जब यह दशा देखी कि मेरे भाई का चित्त मेरी ओर से इतना फिर गया, तो वह अपनी जागीर में जाकर रहने लगी और वहाँ एक सुदृढ़ दुर्ग बनवाया। राजा ने वहाँ भी रानी को न रहने दिया, आज्ञा दी कि किले को खाली करके अपने पति के पास चली जाओ रानी अपने पति के पास तो जाना चाहती ही थी परन्तु अप्रतिष्ठा के साथ किला खाली करना उनको स्वीकार न था, इसलिये उन्होंने पटियाला जाने का विचार किया। मार्ग में एक विश्वास पात्र मनुष्य ने समझाया कि राजा का चित्त डांवाडोल हो रहा है। ऐसी दशा में पटियाला जाना ठीक नहीं। रानी फिर किले में आ गई। राजा ने क्रोध में आकर रानी से लड़ने की तैयारी की, परन्तु मन्त्रियों ने सम्मति दी कि लड़ाई में रानी से न जीतोगे, इसलिये समझा बुझाकर रानी से मेल किया और कहा कि पटियाले में आपकी पहली की भांति मान मर्य्यादा का विचार रक्खा जावेगा। जब रानी अपने भाई की बातों में आगई तो वह ढोंधन के किले में कैद करके रक्खी गई। वहां बहुत समय तक कैद रहने के पीछे एक दिन अपने नौकर के वेश

हर निकल गई और भेस्याँ मे जाकर रहने लगी। वहाँ
ो शुभचिंतक नौकरों के भय से फिर राजा ने कुछ छेड़-
। की रानी जब तक जीवित रही अपनी जागीर का
करती रही और रियासत पटियाले से कुछ सम्बन्ध
ा। रानी बड़ी पति परायणा थी, परन्तु पति-पत्नी
र बहुत कम रहे। सन् १७६६ ई० में रानी साहब
त्यु को प्राप्त हुई। रानी की मृत्यु पर सारे पटियाले
तव में शोक छा गया। कहा जाता है कि भाई के
र से रानी के हृदय में ऐसा शोकाघात पहुंचा था
वह अधिक जीवित न रह सकी। अपनी बहिन की
राजा साहबसिंह को भी बड़ा शोक हुआ और
... ... नता पर बड़ा परचाताप हुआ। अब उन्हें अपनी बहिन
के सब गुण और उपकार याद आने लगे परन्तु अब परचाताप
करने से क्या हो सकता था।

सिन्धु देश की रानी

सन् ७१८ ई० मे अरब के मुसलमानों की सेना ने सिन्धु
: चढ़ाई की सिन्धु देश के अधिपति राजा दाहिर ने अपने
व राजकुमार को मुसलमानों की लड़ाई रोकने के लिये
ा। मुसलमान सेना का अध्यक्ष मुहम्मद बिन कासिम
ने शौर्यवीर्य का परिचय देता हुआ अपूर्व वीरता के साथ
नी सेना को लड़ाने लगा। निदान प्रचंड युद्ध में सिंधु
कुमार को परास्त करके यवन सेना राजधानी की ओर
उर हुई। सिन्धुराज ने जब यह समाचार सुना तो अपनी
अपने सहायक राजाओं की सेना की राय लेकर मुसलमान

सेना के सम्मुख लड़ने आये। भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। कुछ काल पश्चात् एक गोली से राजा का हाथी घायल हुआ हाथी चिंघाड़ कर युद्ध क्षेत्र से दूर भाग गया, राजा के हाथी को भागते हुए देखकर राजपूत सेना निरुत्साहित हुई। राजा आप भी बहुत व्याकुल हो गये थे, परन्तु फिर भी अश्वारूढ़ होकर रणक्षेत्र में आये और धैर्य्य पूर्वक युद्ध करने लगे परन्तु विजय लक्ष्मी कुछ भी राजा पर प्रसन्न न हुई। वह खड्ग लेकर शत्रु सेना से लड़ते २ मारे गए। यवन सेना उत्साह के साथ राजधानी की ओर बढ़ी, परन्तु राजा के स्थान में अब उनकी रानी ने सेना की अध्यक्षता ग्रहण की, रानी अपनी सेना को उत्साहित करती हुई लड़ाने को उद्यत हुई। वह वीरता पूर्वक शत्रु सेना में लड़ने की दृढ़ प्रतिज्ञ हुई। अपनी सेना को पराक्रम दिखाने के लिये उत्तेजित करने लगी, उन्होंने कहा कि "क्षत्रियों को युद्ध में पराक्रम दिखाने] वीरता पूर्वक लड़कर स्वर्ग प्राप्त करने का अवसर सौभाग्य से मिलता है। क्षत्रियों के लिये आज बड़े सौभाग्य का दिन है इसलिये उत्साह से लड़ो।" विधवा राजमहिषी ने अतीव तेज से मुहम्मद बिनकासिम के विरुद्ध अस्त्र धारण किया। उनके तेज से पराजित सिन्धु सेना फिर से उत्साह पूर्वक युद्ध करके राजधानी की रक्षा में कटिबद्ध हुई। वीर रमणी धन्य हुई वीर रमणी के अपूर्व वीरत्व से शत्रु सेना की गति अविरुद्ध हुई।

सेनापति ने कोई उपाय न देखकर नगर को घेर लिया और गमनागमन बन्द कर दिया निदान अन्नाभाव होने पर भी वीर राजमहिषी स्वसंकल्प पर दृढ़ रही। सिन्धु राजमहिषी और उसके अनुवर्त्ती राजपूतों की वीर कीर्ति इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों से चिरकाल तक लिखे रहने योग्य है।

शमित्योम्